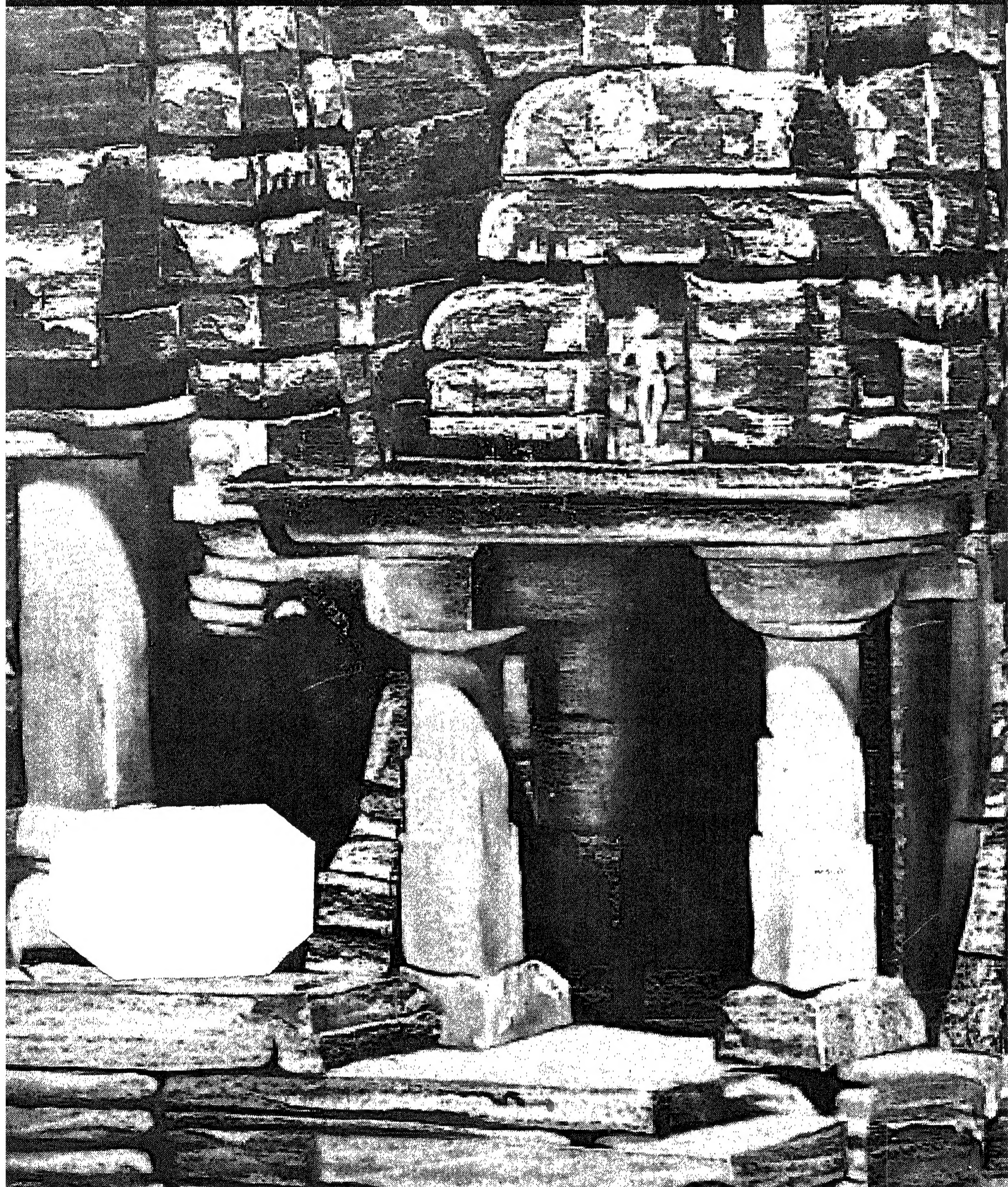
भारत के जनप्रिय सम्राट

फणीन्द्र नाथ चतुर्वेदी



भारत के जनप्रिय सम्राट

फणीन्द्र नाथ चतुर्वेदी

अक्षर प्लाण्ट

प्रकाशन वर्ष	:	२००२ ई०
मूल्य	:	४९/- रु०
सर्वाधिकार	:	©लेखकाधीन
पुस्तक	:	**भारत के जनप्रिय सम्राट**
लेखक/कला प्रस्तुति	:	फणीन्द्रनाथ चतुर्वेदी
ग्राफिक्स	:	वीज़ बिजनेस सेण्टर लहुराबीर, वाराणसी
प्रकाशक	:	अक्षर प्लाण्ट बी २६/४७, नवाबगंज, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी-५
वितरक	:	लोक साधना केन्द्र ३/१६, कबीर नगर, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी-५

अन्धेरे के विरुद्ध
उजाले के शासन को

भूमिका

शासन एक लिप्सा भी है और शासन ईश्वरीय इच्छा से अन्याय, शोषण, कुपोषण, अधर्म और बुराइयों को वैयक्तिक और राष्ट्रीय जीवन से उपेक्षित करने तथा न्याय, विधि, व्यवस्था धर्म के चराचर मूल्यों की सुदृढ़ स्थापना के उद्देश्यों की प्राप्ति का एक पवित्र साधन भी है। शासन, जब निरपेक्ष, तटस्थ ईश्वरीय प्रेरणा की अनुभूति में स्वीकार किया जाता है, तब यह एक आत्मीय भजन बनकर समय के आन्दोलनों को सुसंस्कृत करता है। 'भारत के जनप्रिय सम्राट' में पुरूरवा से छत्रसाल तक के जनप्रिय राजाओं के कार्यक्रमों को एक सूक्ष्म दृष्टि से देखा गया है। सारे सम्राटों का आकलन करने से पता चल ही जाता है–ये जनप्रिय क्यों रहे? ये अप्रिय क्यों नहीं हुए? साहित्य, कला, संस्कृति, धर्म, सेवा, उद्योग–कला–कौशल, धर्म, सेवा, शौर्य के गुणों का संगठन जिस सम्राट ने जीवन में किया, वह जनप्रिय हुआ और जिसने शासन को अपनी कुप्रवृत्तियों, अहं और वासना की पूर्ति का संसाधन बनाया, वह विनष्ट हो गया। दूसरे शब्दों में आत्मशक्ति से जिस राजा ने इन्द्रियों पर शासन किया, वह जनप्रिय बना और जिस राजा ने इन्द्रियों को स्वच्छाचारी बनाया, वह अप्रिय हो गया। सम्राट होना और जनप्रिय होना– एक साथ संभव नहीं होता। अनुशासन राजस्व और प्राशासन के विन्दुओं पर सम्राट कैसे जनप्रिय रह सकता है? पर, ऐसे सम्राट हुए हैं, जो जनप्रिय रहे हैं। 'सम्राट' पद साधना की एक सफलता है। सम्राट साम्राज्य में जनहित का साधन है। सम्राट के इन्हीं विन्दुओं को सामने रखकर 'भारत के जनप्रिय सम्राट' की इस लघु खोज में पुरूरवा से छत्रसाल–वेदों से चलकर हाल की सदी तक के सम्राटों के जनप्रिय प्रतिनिधि राजाओं के जीवन–दर्शन का स्पर्श मैंने किया है। लक्ष्य है अपने जीवन के रेखाचित्र को भारत के जनप्रिय सम्राटों के लोकप्रियता के रंगों से रंगकर जनप्रिय आज के लोकतंत्र में कोई भी हो सकता है। कौन है, जो जनप्रियता का रंग नहीं चाहता? जनप्रिय होना है तो 'भारत के जनप्रिय सम्राटों' की जनप्रियता के रंगों को समझना होगा। इसी से जनप्रियता की वर्तमान चुनौतियों को सामने रखकर 'भारत के जनप्रिय सम्राट' प्रस्तुत कर रहा हूँ।

– फणीन्द्र नाथ चतुर्वेदी

क्रम

राजा पुरूरवा

ब्रह्मा के पुत्र थे अत्रि, जिनके नेत्रों से चन्द्रमा का जन्म हुआ। ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को ब्राह्मण औषधि और नक्षत्रों का स्वामी बना दिया। चन्द्रमा ने त्रिलोकी विजेता हो राजसूय यज्ञ किया। बलपूर्वक एक बार चन्द्रमा ने वृहस्पति पत्नी तारा को हर लिया। वृहस्पति ने अनेक बार पत्नी तारा को लौटाने की प्रार्थना चन्द्रमा से की, पर, बात बनी नहीं। शुक्राचार्य जी ने वृहस्पति के द्वेष से चन्द्रमा का साथ पकड़ा और महादेव ने अपने विद्यागुरु अंगिरा-पुत्र वृहस्पति का साथ लिया। इन्द्र ने सभी देवों के साथ वृहस्पति का पक्ष लिया। तारा को लेकर देवासुर संग्राम एक हो ही गया! अंगिरा जी ने ब्रह्मा से हस्तक्षेप करने को कहा। ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को डाटा और तारा को वृहस्पति के हवाले कर दिया। तारा उस समय गर्भवती थी। वृहस्पति सन्तान कामी थे। अत: उस पुत्र को अपना घोषित किये, चन्द्रमा ने अपना कहा। फिर चन्द्रमा और वृहस्पति में ठन गयी। ब्रह्माजी ने हस्तक्षेप फिर किया और तारा से अकेले में पूछा-किसकी संतान है तुम्हारे गर्भ में! लजाती तारा ने कहा-'चन्द्रमा की।' अत: चन्द्रमा को बालक मिला। ब्रह्मा जी ने बालक का नाम बुध रखा।

बुध द्वारा इला के गर्भ से पुरूरवा का जन्म हुआ। एक दिन इन्द्र की सभा में पुरूरवा के रूप, गुण, उदारता, शील, वैभव और शौर्य की अनुशंसा नारद जी के मुंह से सुनकर उर्वशी अप्सरा पुरूरवा को अपनी आँखों से देखने पुरूरवा के पास पहुँची। देवांगना को अपने पास देखकर पुरूरवा भी आह्लादित हो उठे। उर्वशी को मित्रावरुण के शाप से मृत्युलोक आना पड़ा था। दोनों के बीच मधुर संभाषण हुआ। उर्वशी ने अपनी अनुरक्ति पुरूरवा और पुरूरवा ने अपना प्रेम उर्वशी में व्यक्त किया। देवांगना मृत्युलोक के इस शौर्य पर निछावर थी! पर, मानिनी उर्वशी ने पुरूरवा के बीच शर्त्त रखी, जिसमें धरोहर रूप में भेंड के दो बच्चे राजा पुरूरवा को सौंपे रक्षार्थ और बोली-मृत्युलोक में वह भोजन में मात्र घृत खाया करेगी और रतिक्रिया के समय को छोड़ अन्य किसी समय पुरूरवा वस्त्रहीन न दिखें उर्वशी को। कामशास्त्रोक्त रीति से चैत्ररथ, नन्दनवन आदि में दोनों विहार करने लगे। वर्षों बीत चले। इधर लम्बी अवधि तक इन्द्र ने उर्वशी को नहीं देखा। उसे लाने के लिये गन्धर्वों को इन्द्र ने भेजा। आधी रात के अन्धेरे में गन्धर्वों ने उर्वशी के पास आकर दोनों धरोहर मेमनों को चुरा लिया और चलते बने। पुत्रवत पालित मेमनों की 'बें-बें' ध्वनि सुनते ही उर्वशी आवेश में बोलने लगी-'अरे! पुरूरवा तो

शावकों को बचा नहीं पा रहा है। यह दिन में मर्द बनता है, रात में स्त्रियों की तरह डर कर सोया है।' हाथी को बिंधे अंकुश की तरह उर्वशी के व्यंग्य बाणों से बिंधे पुरूरवा क्रोधित हो तलवार ले निर्वस्त्र ही मेमनों के पीछे दौड़ पड़े। गन्धर्व मेमने छोड़ वहीं बिजली की तरह चमकने लगे, जिनके प्रकाश में उर्वशी ने नग्नावस्था में पुरूरवा को देख लिया। शर्त्त भंग हो चुकी थी। मृत्युलोक देवलोक से छल लिया गया था! उर्वशी जा चुकी थी।

पुरूरवा व्याकुल हो गये। उर्वशी के बिना उन्मत्त की तरह पृथ्वी में इधर-उधर भटकने लगे। एक दिन कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी के तट पर उर्वशी को पांच अन्य प्रसन्नमुखी सखियों के साथ देखा पुरूरवा ने और बोले-'प्रिये ठहरो जरा! मेरा शरीर तुम्हारे बिना निष्प्राण है, जिसे भेड़िये ही खाकर संतुष्ट हो सकेंगे।' उर्वशी ने कहा-'स्त्रियों से कैसी मित्रता? भेड़िया और स्त्री दोनों निष्ठुर हैं। क्रूरता और चिढ़ तो स्त्रियों की नाक है। फिर भी तुम राजा हो, घबराओ मत। प्रति वर्ष के बाद एक रात तुम मेरे साथ रहा करोगे। तब तुम्हें और भी सन्तानें होंगी।' पुरूरवा ने देखा-उर्वशी गर्भवती है। एक वर्ष बाद जब राजा पुनः वहाँ गये, तब तक उर्वशी एक वीर पुत्र की माता हो चुकी थी। रातभर उर्वशी के पास रहने के बाद पुरूरवा पुनः विदा होते समय विरहाकुल हो गये। उर्वशी ने कहा-'तुम इन गन्धर्वों की स्तुति करो। ये चाहें तो मुझको तुम्हें दे सकते हैं। राजा की स्तुति पर प्रसन्न गन्धर्वों ने राजा पुरूरवा को एक अग्नि स्थाली (अग्निस्थापन का पात्र) दी। राजा ने समझा यही उर्वशी है। हृदय से लगाकर एक वन से दूसरे वन वे घूमते रहे। होश आने पर वे उस स्थाली को वन में छोड़ महल लौट आये और रात में उर्वशी का ध्यान करते रहे। इस तरह त्रेतायुग आरंभ होते ही उनके हृदय से तीनों वेद प्रकट हुए। फिर वे वहीं गये, जहाँ अग्निस्थली छोड़ी थी, वहाँ अब एक शमी वृक्ष के गर्भ में एक पीपल का पेड़ उग आया था। उससे दो अरणियाँ उन्होंने बनायीं। उर्वशी की कामना से नीचे की अरणिको उर्वशी, ऊपर की अरणि को पुरूरवा और बीच के काष्ठ को पुत्ररूप में चिन्तन करते हुए अग्नि प्रज्वलन के मंत्रों से मंथन किया। इससे 'जातवेदा' नामक अग्निप्रकट हुआ। राजा पुरूरवा ने त्रयी विद्या से आहवनीय, गार्हस्वत्य और दाक्षिणाग्नि-तीन भागों में बाँटकर अग्नि को पुत्ररूप में स्वीकार किया। फिर उर्वशी लोक की इच्छा से इन तीनों अग्नियों से श्रीहरि का यज्ञ किया। त्रेता के पूर्व ऊँ कार ही एक मात्र वेद था। देवता मात्र नारायण थे। अग्नि भी तीन नहीं एक, वर्ण भी केवल एक 'हंस था। पुरूरवा राजा द्वारा ही त्रेता में वेदत्रयी और अग्नित्रयी का आविर्भाव हुआ। अग्नि को सन्तान रूप में स्वीकार कर पुरूरवा ने गन्धर्व लोक की प्राप्ति की।

राजा वृत्रासुर

इन्द्र और वृत्रासुर का युद्ध वैदिक युगीन इतिहास का एक ओजस्वी अनावरण है। वर्त्तमान मन्वन्तर (आधुनिक विज्ञान में प्रकाशवर्ष की तरह का दिव्यवर्ष में भारतीय कालमान की पहली चतुर्युगी के त्रेतायुग के आरम्भ में वृत्रासुर और इन्द्र के बीच देवलोक के राज्य सिंहासन को लेकर युद्ध हुआ।

एक बार देवसभा में नृत्यगान-वाद्य का रंगारंग कार्यक्रम चल रहा था। तभी देवगुरु वृहस्पति के पधारने पर दर्पीले देवराज न उठे, न गुरु को आसन ही दिया। इससे देवगुरु वृहस्पति सभा का त्याग कर बाहर आ गये और देवलोक छोड़कर कहीं अन्तर्ध्यान (भूमिगत) हो गये। इन्द्र को भूल का ज्ञान हो गया। उधर शुक्राचार्य ने देखा-वृहस्पति और इन्द्र में ठन गयी है। अवसर का लाभ उठाकर दैत्यों को प्रेरित कर देवलोक पर उन्होंने प्रभुत्व अपना कस दिया। इन्द्र सहित देवता ब्रह्मा की शरण लिये। ब्रह्मा ने कहा-'गुरु-तिरस्कार' का यह कुफल है। लगता है शुक्राचार्य के नेतृत्व में मेरा ब्रह्मलोक भी छीन लिया जायेगा। एक ही रास्ता है त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप की शरण लो। वे तपस्वी, ब्राह्मण और संयमी हैं। विश्वरूप के ऋषि-आश्रम में देवता गये और बोले-'हम एक तरह से तुम्हारे पिता हैं। हमारी समस्या का निराकरण करें।' विश्वरूप ने वैष्णवी विद्या के प्रभाव से असुरों की संपदा छीनकर इन्द्र को दिला दिया और नारायण कवच को धारण करने का उपदेश देकर नारायण कवच के रहस्यों को समझा दिया। विश्वरूप के तीन सिर थे। एक मुँह से सोमरस पीते, दूसरे से सुरापान करते, तीसरे से अन्न ग्रहण करते थे। इनके पिता त्वष्टा बारह आदित्य देवता थे। विश्वरूप की मां असुरकुल की थीं। अतः मातृप्रेम में ये छिपकर असुरों के भाग के लिए आहुति देवताओं के भाग के आहुति के साथ दे दिया करते थे। त्वष्टा का यह साम्यवाद इन्द्र को आपत्तिजनक था। इन्द्र ने विश्वरूप के तीनों सिर काट डाले। विश्वरूप का सोमपायी सिर पपीहा, सुरापायी सिर गौरया, और अन्नाहारी सिर तीतर हो गया। इन्द्र पर ब्रह्महत्या लगी। इस ब्रह्महत्या को चार भाग में कर इन्द्र ने प्रत्येक चतुर्थांश को पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रियों में बाँट दिया।

विश्वरूप के वध हो जाने पर, इनके पिता त्वष्टा ने 'इन्द्रशत्रोर्विवर्धस्व' मंत्र से यज्ञ का आयोजन इन्द्र के शत्रुओं की बाढ़ की मानसिकता से किया, पर, ऋत्विजों ने उच्चारण के भेद से अर्थ बदल दिया, जिसका आशय था- 'इन्द्र! शत्रुओं पर तुम्हारी वृद्धि हो।' यज्ञ की सम्पन्नता पर वृत्रासुर प्रकट हुआ।

प्रचण्ड प्रतापी वृत्रासुर हुआ। वृत्रासुर ने देवलोक पर आधिपत्य कर लिया। देवताओं सहित इन्द्र भगवान विष्णु की शरण लिए। भगवान ने रास्ता सुझाया- 'दधीचि से मिलो।' अथर्ववेदी दधीचि ने सर्वप्रथम नारायण कवच का त्वष्टा को उपदेश दिया। त्वष्टा से विश्वरूप को, विश्वरूप से तुम्हें मिला। दधीचि की हड्डियाँ प्रचण्ड और अभिमंत्रित हैं। तुम्हारे मांगने पर या अश्विनीकुमारों के मांगने पर वे नकारेंगे नहीं। उन हड्डियों से आयुध बनाकर मेरी ईश्वरीय शक्ति से उसे संयोजित कर उससे वृत्रासुर का सर काट लो। इसके बाद तुम्हारे पुराने दिन पुनः लौट आयेंगे। दधीचि ने हड्डियाँ सौंप दीं। दधीचि की हड्डियों से आयुध तैयार हुआ। इन्द्र और वृत्रासुर में भयानक युद्ध हुआ। वृत्रासुर के आघात से ऐरावत चिंघाड़ कर अट्ठाइस हाथ पीछे हट गया। इन्द्र मूर्च्छित हो गये। वृत्रासुर ने इन्द्र को वीरता धर्म में छोड़ दिया। इन्द्र चेतना लौटने पर पुनः भीषण युद्ध करने लगे। वृत्रासुर को अकेला छोड़ सारे असुर भाग खड़े हुए। वृत्रासुर अकेला डटा सबसे जूझता रहा। देवसेना को अकेले ही बलात रोक दिया वृत्रासुर ने। वृत्रासुर की भयानक गर्जना से देवता मूर्च्छित हो गये। वृत्रासुर ने इन्द्र को ललकारा-'विश्वरूप का शीश धोखे से काटने वाले इन्द्र! तेरा शौर्य कहाँ गया? वज्र क्यों नहीं चलाता? शीश ही उतारो न? जीना-मरना युद्ध में तो होता ही रहता है।' इन्द्र ने अपने वज्र से वृत्रासुर की भुजायें काट डालीं। वृत्रासुर ने ऐसा प्रहार किया कि इन्द्र के हाथ से वज्र गिर गया। यह वज्र वृत्रासुर के पास जा गिरा। इन्द्र उठाने को लज्जावश उत्सुक नहीं हो पा रहे थे। वृत्रासुर ने कहा-'उठा लो वज्र और शत्रु को मारो। दुःखी क्यों होते हो इन्द्र!' इन्द्र ने कहा-'दानवश्रेष्ठ वीर! वस्तुतः तुम महान और सिद्ध पुरुष हो। तुम दैत्य नहीं, भगवद्भाव में एकनिष्ठ हो। तुमसे युद्ध कर मैं गौरवान्वित हुआ हूँ।' ऐसे वार्त्तालापों के बीच दोनों में युद्ध होता रहा। इन्द्र ने अपने योगबल और 'नारायण कवच से स्वयं को सुरक्षित कर रखा था। वृत्रासुर का वध का योग उपस्थित होते ही इन्द्र ने वृत्रासुर का सिर काट डाला। वृत्रासुर ने मरने से पहले उद्घोष किया-'दधीचि की पावन हड्डियों के इस शस्त्र में भगवान की कृपा धारा का अजस्त्र प्रवाह है, जिसका स्पर्श पाकर मैं कृतार्थ हूँ।' लगता था जैसे वृत्रासुर स्वयं अपना असुर देह मिटाने पर तुला था। वृत्रासुर ने प्राणोत्सर्ग किये।

राजा अम्बरीष

भारत में दो नाभाग हुए हैं। एक दिष्टि के पुत्र नाभाग थे और दूसरे मनुपुत्र नभग के पुत्र नाभाग। इन द्वितीय नाभाग के पुत्र हुए अम्बरीष। अम्बरीष भौतिक उत्कर्ष के साथ सत्य, परोपकार, जनहित, आत्मसंयम और सहिष्णुता के आन्तरिक गुणों से समृद्ध सम्राट थे। राष्ट्रीय हित के अनुष्ठान ये करते रहते थे। तत्कालीन भूमण्डलीकरण में पृथ्वी के सातों द्वीपों के राजैश्वर्य में राजा अम्बरीष सबके हृदयों तक पर शासन करते थे। शासन-प्रशासन के आभामण्डल को जलते दीप की भाँति क्षणिक मानते थे राजर्षि अम्बरीष। राज्य-सम्पदा एक यज्ञ है-चराचर सह-अस्तित्व के कल्याण का अनुष्ठान-ऐसा राजनीतिक चिन्तन था राजा अम्बरीष का। आज की इकोलोजी की सदी संत्रासों से मुक्त धरती के हित में 'धन्व' नामक निर्जल शुष्क देश में सरसता की जलधार की लोकहितकारी योजना चालू कर एक अनुष्ठान की निष्ठा में समृद्धि और वैभव की शक्ति जागृत करने वाले सरस्वती नदी के प्रवाह के सामने वसिष्ठ, असित, गौतम आदि आचार्यों के नेतृत्व में भारी लागत के अनेक अश्वमेध यज्ञ किये राजा अम्बरीष ने। प्रजा विपन्नता, शोषण, कुपोषण, दमन और संत्रासों से मुक्त इस राजकीय योजना से लाभान्वित होकर सौहार्द, सच्चरित्रता के सद्‌गुणों को बढ़ाने वाला सत्संग करने लगी इस राजकीय संस्कृति में। राजा अम्बरीष ने प्राकृतिक संसाधनों, जल संसाधनों, वैचारिक संसाधनों के साथ पशु-धन और स्वर्णमान के साथ राजकीय मुद्राओं सहित करोड़ों गायें जनहितकारी चिन्तकों, मनीषियों, ऋषियों, ब्राह्मणों को अनुदान में दिया। उस समय आजकल की तरह 'करेंसी' प्रधान जन-जन में 'मनीफोबिया' की आर्थिक बीमारी नहीं थी भारत में। अक्षयकोष, अजस्र धरती, प्राकृतिक संसाधन, पशु-धन, कृषि, उद्योग, व्यापार से समृद्ध अम्बरीष के नेतृत्व में सारा राष्ट्र और इसकी राजनीतिक हलचलें एक यज्ञमय अनुष्ठान बन गये थे। फिर भी, अम्बरीष दंभी नहीं, विनम्र होते जा रहे थे। इनकी दृष्टि में यह सब ईश्वर करवा रहा था।

राजा अम्बरीष ने एक बार अपनी धर्मपत्नी के साथ द्वादशी प्रधान एकादशी व्रत वर्षभर का धारण किया। इस व्रत का मानसिक अर्थ था-ये अभ्यास करें आचरण की प्रयोगभूमि में कि यह राज्य-सम्पदा और उपभोक्ता-शक्ति सब उनकी निजी निधि नहीं, ईश्वर की है। व्रत पूर्ण हुआ। इस व्रत की सफलता के उपलक्ष पर कार्तिक मास में राजा अम्बरीष ने तीन रात का उपवास किया। आशय इनका था तन-मन-धन के त्रिकोणात्मक प्रदूषणों का आस्वाद न लेकर सत्याभिमान, राज्याभिमान और दुर्जनद्वेष तथा सज्जन राग से मुक्त 'हरि इच्छा बलीयसी' सूत्र

में राजधर्म को आत्मोन्नति में लय कर दें। लोग अपने दुर्गुणों के कारागार में भ्रष्टाचार की हथकड़ी-बेड़ी में बन्दी न हों। गरीबों की भूख का अनुभव राजा अम्बरीष उपवास रखकर करते हुए कैसा अनोखा यज्ञ कर रहे थे! उपवास की सफलता पर यमुना जी में स्नान कर मधुवन में ईश्वर के प्रति कृतज्ञता में नैवेद्य-ग्रहण का इन्होंने अनुष्ठान किया। राज्य-भण्डारण ईश्वरीय नैवेद्य था और हर भूखा-कुपोषित, समृद्धों और सम्पन्नों के साथ बैठकर स्वास्थ्य और स्वादवर्द्धक नैवेद्य का रसास्वादन करने का यह अम्बरीष-अनुष्ठान लोकशक्ति का नूतन जागरण था। पुनः पशुधन का अभिनन्दन किया राजा ने और दूधारू गायें करोड़ों की संख्या में राष्ट्रीय चिन्तकों को अनुदान में अर्पित कीं। हर गाय की सींगें स्वर्णपत्र जड़ित और खुर चाँदी पत्र जड़ित थीं। राजकीय कोष जन-जन के लिए अनुदानित मुक्तहस्त करा दिया गया था। कैसी थी राजस्व-वसूली ईश्वरार्पित! राजकोष खाली करने की होड़ राजा ने पैदा कर दी थी-जनहित में और राष्ट्र के समृद्ध उच्च वर्ग के उद्योगपति राजकोष को भर डालने में आनन्दित होने लगे थे। कर वसूली विभाग अनुदान में रात-दिन डटा था और व्यापारी वर्ग कोष भरने में इनसे आगे बढ़ जाना चाहता था!

ऐसे अद्‍भुत भारत के अद्‍भुत दिन के अद्‍भुत राजा थे राजा अम्बरीष। दान, अनुदान के उस दिन के सारे कार्यों को पूर्ण कर राजा अम्बरीष जैसे ही पारण करने को उद्यत हुए, उसी समय शाप और वरदान दोनों ही देने में सहज ऋषि दुर्वासा जी अतिथि रूप में इनके यहाँ पधारे। राजा अम्बरीष ने हर्ष के साथ इनकी अगवानी की और नमन करते हुए भोजन की प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकार कर दुर्वासा ऋषि यमुना स्नान-ध्यान के लिये चले गये। तरंगी ध्यान योगी ऋषि दुर्वासा यमुना में स्नान के समय समय का ध्यान नहीं रखे और इधर द्वादशी मात्र घड़ी भर बच रही थी। बड़ा ही धर्मसंकट था यह। सारी साधना दाँव पर थी-पारण का मुहूर्त्त बीत जाता और राजा पारण न कर लेते तो सारा अनुष्ठान निष्फल जाता। समय, इसका मुहूर्त्त ही सब कुछ है। समय बड़ा बलवान होता है! ब्रह्मविद् मनीषियों से परामर्श लिया राजा ने। ब्रह्मनिष्ठ महान योगी को बिना खिलाये भोजन ग्रहण करना या द्वादशी रहते पारण न करना दोनों ही दोष हैं। ऐसे में राष्ट्रीय हित किसमें है, प्रदूषण से मुक्ति की क्या प्रणाली अपनायी जाय-यह विचारणीय विन्दु था राजा का। ब्राह्मण परिषद ने मंथन करने के बाद व्यवस्था दी-'श्रुतियाँ हमारी आचार संहिता की नींव हैं। श्रुतियों ने व्यवस्था दी है-'जल पी लेना आहार करना भी है और नहीं भी करना है। अतः जलाहार से पारण कर सकते हैं।' राजा ने ईश्वर का ध्यान करके जल से पारण कर लिया और दुर्वासा जी की प्रतीक्षा करने लगे। दुर्वासा जी लौटे तो राजा की स्थिरता

से उन्होंने अनुमान कर लिया कि राजा ने पारण कर लिया है। दुर्वासा जी उद्वेलित हो गये और क्रोधित होकर बोल पड़े–'धनमद में राजा! तू अंधा है। भगवद्-भक्ति तो छू भी नहीं गयी है तुझे। मुझे भोजन के लिये खुद आमंत्रित किया और बिना मुझे खिलाये खा लिया! ऐसे धर्महीन राजा को दंडित करना आवश्यक है।' ऐसी उत्तेजना में तंत्रयोगी दुर्वासा ने एक आतंकवादी कृत्या अपने जटाजूट से एक बाल उखाड़ कर पैदा कर आदेश दिया–'अम्बरीष को मार डाल!' क्रोध सबसे बड़ी कृत्या है, जो सदाशयता, विनम्रता और जनप्रेमी निष्ठा को, सद्भावना को मिटाने पर आमादा रहती है! राजा उस दहकती आवेशमयी अग्नि ज्वाला से विचलित नहीं हुए, न डिगे। ईश्वर सबका रक्षक है। सुदर्शन चक्र कृत्या को भस्म कर दुर्वासा की ओर बढ़ा। आत्मनिष्ठ यह ज्ञानचक्र–विवेकमण्डल–था, जिसने क्रोध मिटा दिया और क्रोधी की ओर लपका। क्रोधी खुद अपनी क्रोध की लपट में दहकता हैरान हतप्रभ राजा के ईश्वर-प्रेम से घबराया भाग चला। दिशाओं, आकाश, पृथ्वी, अतल-वितल आदि अधोलोक, समुद्र, लोकपाल, स्वर्ग सभी स्थानों पर शरणार्थी बन भागता फिरा। पर, क्रोध और विकार की आग को कहीं भी ठिकाना नहीं मिला! आतंकवाद कहीं भी टिक नहीं पाता। ब्रह्मा, विष्णु, महेश (जो गॉड के रूप में 'जी' जेनरेट (सृजनकर्त्ता ब्रह्मा) 'ओ' (आर्गनाइजर-पालक विष्णु और) 'डी' (डिस्ट्रक्टवायर-प्रलयंकर रुद्र) के हर स्तर पर आत्मरक्षा की गुहार आत्म विकार की क्रोधाभिभृत अन्तर्ज्वाला से उत्पीड़ित दुर्वासा ने किया। श्रष्टा, पालक और संहारक-तीनों विकेन्द्रित इकाइयों ने अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए कहा–'श्रुतियाँ हमारी ईश्वरीय संविधान हैं, जो चराचर (इक्कीसवीं सदी मसीह की इकोलोजी से इसे जाना जायेगा) के बीच सचेतन प्रेम की बागडोर संभालने हेतु व्यवस्थित है। लोकहितकारी कार्ययोजनाओं को भजन की तरह लेकर जो राष्ट्र-यज्ञ में समर्पित है, जो विनम्र है (अक्रोधी है, तुम्हारी तरह क्रोधी नहीं), जिसके राज्य में आतंकवाद है ही नहीं, क्योंकि कोई क्रूर और हिंसक नहीं है, सब ईश्वर प्रेमी हैं। ऐसे जनप्रिय राजा को तुमने मारना चाहा! अपनी शक्ति का अपव्यय किया? हम सबमें से किसी के पास ऐसी सामर्थ्य नहीं है, जो तुम्हें बचा सके! राजा अम्बरीष ही तुम्हें बचा सकते हैं। उन्हीं की शरण लो!' हतप्रभ दुर्वासा भागते हुए आये और अम्बरीष के पैर पकड़ लिये। लज्जित अम्बरीष ने भगवान के सुदर्शन चक्र की वन्दना की और प्रार्थना किया–'यदि मैं जीवनभर और मेरे पूर्वजों ने अपने-अपने जीवनभर में एक भी राष्ट्रीय चिन्तक, मनीषी, योगी, महात्मा और साधक को बिना सम्मानित किये और राज्य-सम्पदा के नैवेद्य रूप में उसे बिना अंशदान दिये, बिना पुरस्कृत किये यदि कभी भी न खाया हो-तो आप महर्षि दुर्वासा की जलन मिटा दें। दुर्वासा जी का हृदय

शीतल हो जाय। मैं किसी की पीड़ा और भय का कारण नहीं बनूँ।' दुर्वासा जी पर सुदर्शन शांत हो गया। अम्बरीष ने कहा-'महर्षि! पूरे एक वर्ष बाद आप पुनः पधारे हैं। आप इस बीच कुछ भोजन नहीं ग्रहण किये हैं। इससे व्यथित मैं भी अभी तक जलाहार ही लेता रहा हूँ। चलें आप नैवेद्य ग्रहण करें। आप भोजन कर लें तभी मैं अन्नाहार लूँगा। आपकी तृप्ति से बढ़कर मेरे रसास्वादन का आधार अन्न, सम्पन्न की सम्पन्नता, ऋद्धि, समृद्धि कुछ भी नहीं है। भोजन तो ईश्वरीय स्वाद का अनुदान और अनुष्ठान हैं। यह राज्य-रस भी ईश्वर का नैवेद्य है। ईश्वर की इच्छा से इसे ग्रहण करें, जिससे राष्ट्र कृतज्ञ हो और यह लोक-शक्ति का अनुष्ठान सफल हो! दुर्वासा गद्गद् हो उठे और बोले-राजन्! आप करुणाशील हैं। मैं आपका, आपके राष्ट्रीय हित के अनुष्ठान का अपराधी था, फिर भी क्षमामय होकर आपने मुझपर अनुग्रह किया है। आप भोजन रूप में नैवेद्य दें। आपसे ईश्वर निष्ठा मेरी बढ़ी है।

राजा ययाति

प्रतापी राजा नहुष के छः पुत्र थे–यति, ययाति, संयापि, आयति, वियात और कृति। राजा नहुष बड़े पुत्र यति को राज्यभार देना चाहते थे, पर वह वीतराग निकला। इन्द्र पत्नी शची से सहवास की कुचेष्टा से ब्राह्मण ने इन्द्र पद पाये राजा नहुष को इन्द्र पद से च्युत कर अजगर बना दिया था। ऐसे राजा के पद पर ययाति बैठे। चारों भाइयों को चारों दिशाओं में नियुक्त कर दिया। क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी और दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से राजा ययाति का विवाह हुआ। राजनीति के सेतु से होकर भोग से योग का अद्भुत इतिहास है राजा ययाति का जीवन।

दैत्यराज वृषपर्वा की मानिनी कन्या शर्मिष्ठा थी। एक दिन अपनी गुरुपुत्री देवयानी और हजारों सखियों के साथ एक सुन्दर उद्यान में घूमने शर्मिष्ठा गयी। वहाँ सरोवर में जलक्रीड़ा सबने की। भूलवश शर्मिष्ठा ने देवयानी के वस्त्र पहन लिये अपना समझकर। देवयानी क्रोधित होकर बोली-'एक तो तेरा पिता असुर, फिर हमारा शिष्य! हम हैं ब्राह्मण श्रेष्ठ भृगुवंशी और हमारे पवित्र वस्त्र तूने पहन लिये?' दैत्यकन्या शर्मिष्ठा नागिन की तरह फूत्कारती देवयानी के पहने वस्त्र छीनकर उसे कुएं में धकेल दी और सारी सहेलियों के साथ चलती बनी। देवयानी दुःखी होकर रोने लगी कुएँ में पड़ी नग्न शरीर! शर्मिष्ठा के जाने के बाद संयोगवश उधर से राजा ययाति निकले। प्यासे वे कुएँ में झाँके तो देवयानी दीख पड़ी। वह वस्त्रहीन थी। ययाति ने अपना दुपट्टा उसे दे दिया

और दयालुतावश अपना हाथ उसे देकर कुएँ से बाहर किया। देवयानी ने कहा-'अब यह हाथ मैं किसी अन्य को नहीं दूँगी। यह जीवन आपको अर्पित किया।' वृहस्पति का पुत्र कच मेरे पिता शुक्राचार्य से मृत संजीवनी विद्या पढ़ा था। पढ़ाई पूरी कर वह जब जाने लगा तो देवयानी ने उससे विवाह का प्रस्ताव किया। पर, गुरुपुत्री होने से कच ने नकार दिया। इस पर देवयानी ने शाप दिया कि कच की पढ़ी विद्या निष्फल हो जाय। कच ने भी देवयानी को शाप दिया कि उसका विवाह किसी ब्राह्मण लड़के से न हो। इस शाप से क्षत्रिय ययाति से ब्राह्मण देवयानी के विवाह की संभावना देवयानी ने सद्यः संभावित दिखायी प्रारब्ध के अधीन। ययाति ने बात मान ली।

देवयानी वहाँ से घर लौटी, पिता शुक्राचार्य से सारी बातें बतायी। शुक्राचार्य क्षुब्ध हो गये। वे देवयानी को लेकर नगर से निकल पड़े। शाप देने या शत्रुपक्ष से मिल जाने के भय से वृषपर्वा शुक्राचार्य को मनाने में ही हित समझा। शुक्राचार्य ने कहा-'मैं अपनी पुत्री देवयानी के अपमान और उपेक्षा को अपना तिरस्कार मानता हूँ। देवयानी जैसा चाहे, वैसा करो, तभी मैं लौट सकता हूँ।' वृषपर्वा ने शर्त्त मान ली। देवयानी ने कहा-'मेरे पिता जिस किसी को मुझे दें और मैं जहाँ कहीं जाऊँ शर्मिष्ठा अपनी सहेलियों के साथ मेरी सेवा में वहीं चले।' शर्मिष्ठा ने भी परिवार के संकट टालने हेतु देवयानी की बात मान ली। विवाह के समय शुक्राचार्य ने कहा ययाति से-'राजन शर्मिष्ठा को सेज पर कभी सोने मत देना। देवयानी ही तुम्हारी अंकशायिनी है।' देवयानी कुछ समय बाद पुत्रवती हो गयी। शर्मिष्ठा ने भी एकान्त में ययाति से पुत्र कामना की। इस प्रकार देवयानी से दो पुत्र हुए-यदु और तुर्वसु। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से तीन पुत्र हुए-द्रुह्यु, अनु और पूरु। पूरु से ही भरतवंश में पाण्डव हुए आगे चलकर। पता चल ही गया कि शर्मिष्ठा के तीनों पुत्र ययाति से ही हैं। क्रुद्ध देवयानी पिता के पास आयी और रो-रोकर सारी बातें शुक्राचार्य से बतायीं। ययाति भी देवयानी को मनाने पहुँच चुके थे। शुक्राचार्य ने ययाति को शाप दे दिया-'तुम्हें बुढ़ापा आ जाय।' ययाति ने कहा-'आपके शाप से आपकी पुत्री देवयानी का अनिष्ट है।' शुक्राचार्य ने कहा-'अच्छा प्रसन्नता से जो तुम्हें अपनी युवानी दे दे उससे अपना बुढ़ापा बदल लो।' ययाति ने अपने सभी पुत्रों में एक-एक से यौवन मांगा। पर, यदु और तुर्वसु-देवयानी पुत्र तैयार नहीं हुए। शर्मिष्ठा के भी द्रुह्यु और अनु भी तैयार नहीं हुए। पर, पूरु ने पिता में निष्ठा व्यक्त करते हुए बुढ़ापा ले लिया और अपना यौवन ययाति को दे दिया। ययाति सातों द्वीपों के एकछत्र सम्राट थे। इन्द्रियाँ भोग से तृप्त नहीं हो सकीं। फिर ययाति को वैराग्य हुआ। जीवन व्यर्थ गया-ऐसी आत्मग्लानि हुई इन्हें। ययाति ने दक्षिण पूर्व दिशा में द्रुह्यु, दक्षिण में

की सारी संपत्तियों को पूरु के हवाले किया और बड़े भाइयों को पूरु के अधीन कर दिया। ययाति अब वन की ओर चल पड़े। आत्मसाक्षात्कार से त्रिगुण मय लिंग शरीर नष्ट कर डाला। देवयानी ने सुना तो भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करती उन्होंने लिंग शरीर त्याग दिया। इस प्रकार ययाति और देवयानी ने देहत्याग कर भगवान श्रीकृष्ण के ध्यान में प्राणों का त्याग कर दिया। ऐसे होते थे भारत में सम्राट और उनके राजनीतिक दर्शन।

राजर्षि ऋषभदेव

ब्रह्मा के मानस पुत्र स्वायंभुव मनु के पुत्र प्रियव्रत आत्मविद्या में निमग्न राज्यशासन से वीतराग थे। ये ब्रह्मा के ही मानस पुत्र नारद जी से दीक्षा लेना चाहते थे कि ब्रह्मा जी ने आकर प्रियव्रत को ईश्वर की इच्छा से राज्य भोग का आदेश दिया। बड़ों का मान रखने के लिये प्रियव्रत ने प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती से विवाह किया, जिससे आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि-दस पुत्र और इनसे छोटी एक कन्या ऊर्ज्वस्वती का जन्म हुआ। इनमें कवि, महावीर और सबने बाल्यावस्था से ही नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए। प्रियव्रत की दूसरी पत्नी से उत्तम, तामस और रैवत तीन पुत्र हुए, जो तीन मन्वन्तरों के समय-शासक हुए। राजा प्रियव्रत ने ग्यारह 'अर्बुद' वर्षों तक शासन किया। इन्होंने पृथ्वी की सात परिक्रमायें कर सात समुद्र तैयार किये, जिनसे सात द्वीप बने। ये थे-जम्बू, ह्यक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर द्वीप। प्रत्येक द्वीप का राजा एक एक पुत्र को राजा प्रियव्रत ने बनाया। पुत्री ऊर्ज्वस्वती का विवाह शुक्राचार्य जी से किया। प्रियव्रत के पुत्र आग्नीध्र जम्बूद्वीप का शासन करने लगे। प्रियव्रत तपस्या में लीन हो गये। पूर्वचिति नाम की ब्रह्मा की प्रेरणा से भेजी गयी अप्सरा से आग्नीध्र का विवाह हुआ, जिसके गर्भ से नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत्त, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल-ये नौ पुत्र पैदा हुए। राजा आग्नीध्र के बाद नाभि आदि नौ भाइयों ने मेरु की मरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा और देववीति नाम की नौ कन्याओं से विवाह किया। राजा नाभि सन्तानहीन थे। पत्नी मरुदेवी के साथ यज्ञपुरुष का भजन किया। ऋत्विजों के आह्वान पर यज्ञपुरुष भगवान प्रसन्न होकर प्रकट हुए बोले-मैं यज्ञ का प्रयोजन जान रहा हूँ। मैं स्वयं अपनी अंशकला से नाभि के यहाँ जन्म लूँगा। नाभि के यहाँ महारानी मरुदेवी के गर्भ से दिगंबर संन्यासी और ऊर्ध्वरेता मुनियों का धर्म प्रकट करने वाले ऋषभदेव जी का जन्म हुआ। ऋषभदेव जी जैनधर्म के प्रवर्त्तक पद पर

थे कि इन्द्र ने एक बार वर्षा इनके राज्य में रोक दी। योगेश्वर भगवान ऋषभदेव ने हँसकर अपनी योगमाया से अपने 'वर्ष' अजनाभ खण्ड में खूब जल-वर्षा करायी। इस पुराण-पुरुष लीला विग्रह ऋषभदेव से मंत्रिमण्डल, नागरिक और सारा राष्ट्र-प्रेम करने लगा राजा नाभि ने इनका राज्याभिषेक कर पत्नी मरुदेवी के साथ बदरिकाश्रम चले गये तपस्या में लीन हो समय आने पर देहत्याग कर ईश्वर में प्राणों को विलीन कर दिया। राजा नाभि ऐसे तेजस्वी थे कि इनके पावन कर्मों का फल था कि श्रीहरि इनके पुत्र बनकर पैदा हुए ऋषभदेव रूप में, जिनसे जैनधर्म का आरंभ हुआ।

उस समय इस देश का नाम था 'अजनाभ'। ऋषभदेव जी के पुत्र भरत से इस अजनाभ का नाम 'भारतवर्ष' पड़ा। देवराज इन्द्र की प्रदत्ता उनकी कन्या जयन्ती से इन्होंने विवाह किया। श्रौत (वेद) स्मार्त्त (स्मृतियाँ) दोनों प्रकार से शास्त्रों के अनुसार कर्मानुष्ठान्न करने वाले ऋषभदेव जी को जयन्ती के गर्भ से सौ पुत्र पैदा हुए। यह योगचर्या की शक्ति थी! भरत जी जैसे महायोगी पहले पुत्र थे। इनसे छोटे कुशावर्त्त, इलावर्त्त, ब्रह्मावर्त्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक, विदर्भ और कीकट-ये नौ राजकुमार शेष नब्बे भाइयों से बड़े थे। इनसे छोटे थे-कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन-ये भगवद् भक्त नौ पुत्र हुए। इनसे छोटे इक्यासी पुत्र विनीत और आज्ञाकारी हुए। ये कर्मशुद्धि के कारण क्षत्रियत्व से ऊपर उठ ब्राह्मण हो गये थे। ऋषभ देव जी ने ईश्वरीय निष्ठा का राज्य-शासन में ऐसा प्रशासन विकसित किया कि इन्द्रियाँ इनकी और राष्ट्र के हर नागरिक की आत्मनियंत्रण से शासनिक दक्षता में प्रवीण हो गयीं। समय आने पर इन्होंने अपने सभी पुत्रों को बुलाकर आत्मधर्म का उपदेश दिया और ज्येष्ठ पुत्र भरत को राज्यसिंहासन पर बैठाकर स्वयं दिगम्बर होकर निकल पड़े। ये सर्वथा मौन हो गये। जड़, अंधे, बहरे, गूँगे हो चले। इन्द्रियों को सक्रिय रहने का अधिकार छीनकर आत्मा में विलीन कर दिया ऋषभदेव जी ने। अवधूतों की तरह यत्र-तत्र घूमने लगे। नगरों, गाँवों, खदानों, किसानों की बस्तियों, बगीचों, पहाड़ी, गाँवों, सैनिक-छावनियों, गोशालाओं, अहीरों की बस्तियों, पाथशालाओं, वनों, आश्रमों में विचरने लगे। कभी इन पर लड़के पत्थर फेंकते, कभी अपमानित करते, पर ये मौन सहन करते रहते। जनता को योग-साधना में विघ्न मानकर ये अजगर वृत्ति धारण कर लेटे ही लेटे खाते-पीते, मल-मूत्र त्यागने लगे। पर, मल में दुर्गन्ध नहीं, सुगन्ध थी। फिर गोवृत्ति, मृगवृत्ति, काकादिवृत्ति ग्रहण कर लेटे-लेटे, खड़े-खड़े खाने-पीने लगे। इनमें अनेक सिद्धियाँ आ गयीं थीं। इस धरती पर ऋषभदेव जी का शरीर योगमाया से मुक्त विचरता हुआ कोंक, वेंक और दक्षिण आदि कुटक कर्णाटक देशों में

रूप में कुटकाचल के वन में घूमने लगे। इसी बीच झंझा के झकोरों और बाँस के घर्षण से प्रबल दावाग्नि धधक उठी और उसने सारे वन को भस्म कर दिया। ऋषभदेव जी भी इस वैश्वानर की भस्म विभूति बन गये।

मगधनरेश जरासन्ध

कंस की दो रानियाँ थीं—अस्ति और प्राप्ति। इन रानियों का पिता था मगध नरेश जरासन्ध। दामाद के निधन और पुत्रियों के वैधव्य से क्षुब्ध जरासन्ध ने कृष्ण के यदुवंशी होने से प्रतिज्ञा धरती को यदुवंश से विहीन करने की कर युद्ध की तैयारी कर २३ अक्षौहिणी सेना से यदुवंशियों की राजधानी मथुरा को घेर लिया। कृष्ण और बलराम जी ने अपने दिव्यास्त्रों के प्रयोग से सारी सेना जरासन्ध की विनष्ट कर दी और जरासन्ध को छोड़ दिया। जरासन्ध इस तरह सत्रह बार मथुरा घेरता रहा। कृष्ण-बलराम जरासन्ध की सेनायें विनष्ट करते और उसे छोड़ते गये। अठारहवीं बार जरासन्ध ने कालयवन की संयुक्त सेना से मथुरा को घेर लिया। जरासन्ध और कालवन-ये दो विपत्तियाँ मथुरा पर टूट पड़ने को उद्यत हो गयीं। कृष्ण ने यहाँ नीति से काम लिया। श्रीकृष्ण ने समुद्र के भीतर ४८ कोस आयताकार का एक अभेद दुर्ग वास्तुशास्त्र के अनुरूप सड़कों, बगीचों, अन्न भण्डारण के पीतल-चाँदी के कोठों से सज्जित द्वारिकापुरी का निर्माण कर यदुवंशियों को उसमें सुरक्षित पहुँचा दिया। शेष प्रजा की रक्षा में बलराम जी के नेतृत्व में मथुरा में सुरक्षित कर श्रीकृष्ण निशस्त्र मथुरा नगर के मुख्य द्वार से निकल कर कालयवन की दृष्टि में पड़ गये। कालयवन ने भी निश्चय किया कि वह भी निशस्त्र कृष्ण से लड़ेगा। वह भगवान श्रीकृष्ण की ओर दौड़ा। भगवान श्रीकृष्ण दौड़ते छिपते बहुत दूर एक पहाड़ी गुफा तक ले गये, जहाँ मुचुकुन्द दीर्घकालीन योगनिद्रा में डूबे पड़े थे। मुचुकुन्द इक्ष्वाकु वंशी महाराज मान्धाता के पुत्र थे। श्रीकृष्ण ने अपना वस्त्र धीरे से निद्रायोगी मुचुकुन्द के शरीर पर डाल दिया। कालयवन ने समझा यही कृष्ण है। उसने मुचुकुन्द को ठोकर मारी। मुचुकुन्द जगे, नेत्रों से जैसे ही काल यवन को देखा-कालयवन उस योगनिद्रा की तेजोमयी ज्वाला में भस्मसात हो गया। भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन कर मुचुकुन्द कृतार्थ हुए।

समय बीतता रहा। कालान्तर में चलकर युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ का आयोजन किया। दिग्विजय की योजना में सृंजयवंशी वीरों के साथ सहदेव को दक्षिण भेजा। नकुल को मत्स्यदेशीय वीरों के साथ पश्चिम में, अर्जुन को बेकमदेशीय वीरों के साथ उत्तर में और भीम को मद्रदेशीय वीरों के साथ पूर्व दिशा में भेजा युधिष्ठिर ने। सभी भाई अपने लक्ष्य में सफल होकर लौटे। पर, मगधराज जरासन्ध पर अभी विजय नहीं हुई थी।

१९

मगधराज जरासन्ध को जीतने के अभियान पर भीम, अर्जुन, कृष्ण ब्राह्मण वेश में मगध की राजधानी गिरिव्रज पहुँचे और जरासन्ध के पास जा भिक्षा की याचना किये। जरासन्ध दानशील और ब्राह्मण-भक्त था। जरासन्ध की तीक्ष्ण दृष्टि ने समझ लिया कि स्वर की कठोरता, दैहिक कठोरता, कलाइयों पर धनुष की प्रत्यंचा की रगड़ के चिह्न इन तीनों को ब्राह्मण सिद्ध न कर क्षत्रिय प्रमाणित कर रहे थे। फिर भी छल वश ब्राह्मण वेश इनका धारण किसी भय से हुआ था। मगधराज जरासन्ध ने निश्चय मन में किया- यदि ये शीश भी मांगते हैं तो देने से पीछे वह नहीं हटेगा। उसने कहा - ब्राह्मणों! जो चाहो मांग लो। शीश तक देने को मैं तैयार हूँ।' श्रीकृष्ण ने कहा-'हमें अन्नभिक्षा नहीं, युद्ध भिक्षा दें। ये हैं भीम, अर्जुन और मैं हूँ कृष्ण।' जरासन्ध ठठाकर हँसा और बोला-'लो, प्रार्थना स्वीकार की मैंने, पर, कृष्ण तुम युद्ध में भय से जल्दी घबरा जाते हो, मथुरा छोड़ समुद्र भागे। अर्जुन छोटा और मेरी जोड़ का योद्धा नहीं है। रहा भीम, यह मेरी जोड़ का है।' यह कहकर जरासन्ध से भीम को एक गदा दे दी और खुद एक गदा लेकर नगर से बाहर निकल कर अखाड़े में एक दूसरे पर प्राणघातक वार करते थे। भयंकर युद्ध चला। रात को भीम और जरासन्ध चित्रवत एक साथ रहते-खाते, सोते, दिनभर प्राणों से खेलते। लड़ते-लड़ते सताइस दिन बीत चले। अठाइसवें दिन भीम ने कहा-कृष्ण! जरासन्ध को जीतना मेरे वश में नहीं दीख पड़ता। श्रीकृष्ण जरासन्ध के जन्म और मृत्यु का रहस्य जानते थे। जराराक्षसी ने जरासन्ध के शरीर के दो टुकड़ों को जोड़कर इसे जीवन दान दिया है। श्रीकृष्ण ने भीम को दिखाकर एक वृक्ष की डाल को बीचोबीच से चीर दिया। भीमसेन रणनीति समझ गये। उस दिन अखाड़े में जाते ही जरासन्ध के पैर पकड़कर उसे धरती पर गिरा दिया। फिर उसके पैर को अपने पैर से नीचे दबाया और दूसरे को अपने हाथों में से पकड़ कर उसे गुदा की ओर से चीर डाला। लोगों ने देखा जरासन्ध के शरीर के दो टुकड़े हो गये हैं। प्रजा विह्वल हो गयी। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने भीम का आलिंगन कर उनका सत्कार किया। जरासन्ध ने जिन राजाओं को बन्दी बना लिया था, उन्हें कारागार से श्रीकृष्ण ने मुक्त कर दिया। जरासन्ध के पुत्र सहदेव को श्रीकृष्ण ने मगधराज्य का उत्तराधिकारी बना दिया। सहदेव ने श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन का राजकीय सम्मान किया। युधिष्ठिर श्रीकृष्ण के अनुग्रह से अभिभूत थे। युधिष्ठिर के नेत्र डबडबा उठे, वे कृतज्ञता में कुछ कह सकने में असमर्थ थे श्रीकृष्ण के समक्ष!

राजा परीक्षित

अभिमन्यु की शहादत की एक रात पूर्व परीक्षित उत्तरा के गर्भ में आये। कौरव और पाण्डव दोनों कुलों के एक मात्र परीक्षित ऐसे उत्तराधिकारी थे, जो महाभारत में बच गये। हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ दोनों के भावी सम्राट परीक्षित ऐसी विभूति थे, जिनके गर्भवास के ही समय भगवान को इन्हें ब्रह्मास्त्र से बचाने के लिये उत्तरा के गर्भ में पूरे गर्भकाल तक रहना पड़ा! ऐसी तेजस्वी सन्तान थे परीक्षित। धृतराष्ट्र और गान्धारी अपने मृत पुत्रों की करुण स्मृति में डूबे परीक्षित में सबको पाते थे। सुभद्रा और उत्तरा परीक्षित में अभिमन्यु को खोजती-पाती थी। द्रौपदी अपने मृत पुत्रों को परीक्षित में ढूँढ़ती थी। राजधानियाँ हस्तिनापुर और इन्द्रप्रथ अपने राजवंश के उत्तराधिकार परीक्षित में खोजती थी। सारा राष्ट्र परीक्षित में अपना भावी सम्राट खोजता था। परीक्षित इस प्रकार सर्वप्रिय जनप्रिय सबकी हृदय की धड़कन थे। परीक्षित ऐसी विभूति थे जो द्वापर में भी थे और कलियुग में थी। प्रलय के बाद द्वापर का अंत हुआ, पर परीक्षित का अन्त प्रलय भी नहीं कर सका और प्रलय द्वारा द्वापर के अन्त पर कलियुग के आरंभ-दो युगों के राज्य श्रृष्टि के इतिहास में केवल परीक्षित हैं, जिनका राज्यारोहण द्वापर में हुआ और कलियुग में शासन किया। द्वापर की विदाई और कलियुग का समारंभ और दोनों के बीच का प्रलय! परीक्षित सम्राट के रूप में इन तीनों स्थितियों में गरिमा के साथ सम्राट रूप में उपस्थित!

द्वापर के अन्त और प्रलय के दिन से पहले भगवान कृष्ण अपने धाम पधारे। यह समाचार सुनकर सबसे पहले कुन्ती ने देह त्याग किया। युधिष्ठिर ने भीम के नेतृत्व में राजमाता के चितारोहण और अर्जुन के नेतृत्व में परीक्षित का राज्यारोहण-अवसाद और आनन्द के दो विरोधी आयोजन एक साथ एक समय एक ही राजधानी में सम्पन्न करने का शासनादेश जारी किया। शवयात्रा में सम्मिलित मंत्रि परिषद के एक सदस्य ने अभिभूत होकर सम्राट युधिष्ठिर से कहा-'धन्य हैं आप, जो एक साथ राजमाता के चितारोहण और युवराज परीक्षित के राज्यारोहण आयोजित किये हैं। मनस्वी सम्राट ही ऐसा कर सकते हैं। युधिष्ठिर ने कहा-'नहीं! हमारे जैसा निकृष्ट कौन हो सकता है, जो कृष्ण के स्वधाम जाने के बाद भी निर्व्यजनों की तरह सांसारिक प्रपंचों के बोझ ढो रहा है! कृष्ण के बिना जीवित हूँ-इसी से ऐसे हृदय विदारक आयोजनों के मानसिक आघात झेल रहा हूँ। धन्य तो हैं राजमाता, जो कृष्ण के बिना एक क्षण एक श्वास भी ग्रहण नहीं कीं! राजमाता चिता पर रखी गयीं। शोकध्वनि बजायी गयी और चिता में आग की लपटें उठीं और कुन्ती की ऐहिक काया भस्मसात हो गयी। चिताभूमि

करुण दृश्य था। परीक्षित राजा बनने को तैयार ही नहीं थे। वे अपने पितामह पाण्डवों की सेवा में उनके साथ वन जाना चाहते थे। उन्हें लग रहा था कि उनके किसी अपराध के कारण पितामहगण परीक्षित का त्याग कर रहे थे। परीक्षित का पक्ष था-बिना पिता की गोद देखे पितामहों की गोद में अभी वे पले हैं, कुछ सीख नहीं पाये कि इनका त्याग पाण्डव क्यों कर रहे हैं? पिता का अभाव परीक्षित से कम पाण्डवों को क्या कम खला था! सम्राट पद उन्हें दण्ड लग रहा था। पाण्डवों का पक्ष था-परीक्षित सिंह-शावक हैं। हृदयवीर! मोहासक्त भाषा से बचें। कर्त्तव्य पथ पर बढ़ें। पिता-पितामह संरक्षक उतना नहीं होते, जितना कि शास्त्र, विधि-व्यवस्था, न्याय, धर्म और आचार-संहितायें। अन्ततः परीक्षित भावी सम्राट को तत्कालीन वर्त्तमान सम्राट युधिष्ठिर ने अपना राजमुकुट पहना दिया और मौन रहे। नये सम्राट का राज्यारोहण हुआ ही था कि पाँचों पाण्डव सदा सदा के लिये राज-पाट छोड़कर निकल पड़े प्राणोत्सर्ग के लिये। परीक्षित भी बिलखते हुए उनके साथ उन्हें लौटाने बढ़े, पर, सब व्यर्थ! पाण्डव अंधे, बहरे, गूंगे हो गये थे। जनता का क्रन्दन, परीक्षित के आँसू उन्हें लौटाने में असमर्थ सिद्ध हुए। पाण्डवों के प्राणोत्सर्ग की यात्रा 'महाप्रस्थान' के नाम से जानी गयी। इस महाप्रस्थान में पाण्डवों ने व्रत लिया था-बिना खाये-पिये, रूके, विश्रामविहीन तब तक चलते जायेंगे, जब तक शरीर गिरकर निष्प्राण नहीं हो जाता। वाणी से मौन, नेत्रों से अन्धे, कानों से बहरे जैसे ये चलते जायेंगे। द्रौपदी हताश विलाप करती दौड़ी, पर किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। द्रौपदी का हृदय सहन नहीं कर सका और पहला प्राणोत्सर्ग द्रौपदी ने किया। एक-एक कर सारे पाण्डव गिरते चले गये। अकेले युधिष्ठिर ही सप्राण-सशरीर स्वर्ग तक पहुँचे।

उत्तर की पुत्री इरावती से परीक्षित का विवाह हुआ, जिनसे जनमेजय आदि चार पुत्र हुए। परीक्षित ने भद्राश्व, केतुमाल, भारत, उत्तरकुरु और किम्पुरुष आदि सभी वर्षों को जीतकर वहाँ के राजाओं से भेंट ली।

परीक्षित का शासनकाल राष्ट्र के पुनर्निमाण का काल था। महाभारत ने घर-घर को विधवाओं के क्रन्दन का निवास बना डाला था। परीक्षित जहाँ भी जाते, सबके आँसू पोंछते, पुनर्वास की समस्यायें सुलझाते निजी सुख-दुःख के अवसर ही नहीं पाते थे। कलियुग के प्रदूषणों को देशनिकाला दे दिया था परीक्षित ने। एक बार देखा कि एक राजवेशधारी शूद्र हाथ में डंडा ले कर गाय-बैल के युगल को पीटता जा रहा है, जैसे वे दोनों अनाथ हों। बैल श्वेत रंग का एक पैर पर खड़ा काँपता डर से मलमूत्र त्याग कर रहा था गाय भी उस शूद्र की ठोकरों से दीन-हीन खड़ी थी। वृषभ के चार चरण तप, पवित्रता, दया और सत्य थे। इन चार चरणों में से गर्व से तप, आसक्ति

बच रहा था। परीक्षित तत्वज्ञ थे-उन्होंने कहा-आप वृषभ रूप में निश्चित ही धर्म हैं। परीक्षित अधर्मरूप राजचिह्नधारी को मारने के लिए तलवार उठाया तो उसने राजसी वेष त्याग कर कहा-मैं कलियुग हूँ। मैं परीक्षित महाराज! आपकी शरण हूँ! शरणागत वत्सल परीक्षित तत्वज्ञ थे। बोले-तुम्हें चार स्थान देता हूँ - द्यूत, मद्यपान, स्त्रीसंग और हिंसा। कलियुग ने और स्थान मांगे तो परीक्षित एक स्थान फिर दिया- सुवर्ण (धन)। परीक्षित अब दिग्विजय में निकल पड़े। वृषभ के तीनों चरण परीक्षित ने जोड़ दिये थे।

एक दिन राजमुकुट में कलियुग प्रवेश कर गया। परीक्षित उसके वश में मात्र मुकुट धारण के चलते मस्तिष्क और विचार के क्षेत्र में आकर शिकार खेलने गहन वन में प्रवेश कर गये। भूख-प्यास और थकान से चूर्ण राजा परीक्षित ने एक आश्रम देखा। यह आश्रम था महर्षि शमीक का। वहाँ ये जब पहुँचे तो महर्षि शमीकध्यानस्थ थे, जिससे उन्हें पता नहीं चला कि उनके पास राजा परीक्षित पधारे हैं। कलि के वश परीक्षित के मस्तिष्क ने उनके हृदय में भावना जगायी-यह ध्यान का ढोंग किया गया है। क्षुब्ध राजा ने एक मृत सर्प धनुष के कोण से उठाकर शमीक के कंठ में माला की तरह लपेट दिया और आश्रम से भूखे-प्यासे ही निकल पड़े, राजधानी पहुँचे। भूखे-प्यासे राजा ने मुकुट उतार कर रखा, अभी कुछ खाते-पीते कि उसके पूर्व ही उनके आत्मस्थ मस्तिष्क में पवित्रभाव जगा-एक महात्मा का ऐसा गर्हित अपमान उनसे कैसे हो गया। आत्मग्लानि से भरे राजा दुःखी हो बैठकर पश्चात्ताप करने लगे-बिना खाये-पीये।

उधर शमीक पुत्र बालक श्रृंगी योग क्रीड़ा कर रहे थे। कुछ बालकों ने शमीक-कंठ में नाग लिपटा देखकर भय से हल्ला किये- साँप-साँप, महर्षि को लपेटे काटने को उद्यत है। दौड़े श्रृंगी ने साँप को पकड़ा तो वह मरा हुआ मिला। उसे फेंक दिया श्रृंगी ने और जल लेकर शाप दिया-'आज से सातवें दिन तक्षक नाग उसे डसेगा, जिसने इनके पिता के कंठ में मृत सर्प डालने की धृष्टता की है। आश्रम में खोज हुई कौन था आया? तब तक महर्षि शमीक भी ध्यान से जाग चुके थे। पता चला परीक्षित पधारे थे। महर्षि शमीक ने श्रृंगी को समझाया तुममें इतनी उत्तेजना कैसे आ गयी? राजा को विषपान का शाप? उसके चलते हम निर्विघ्न सारे अनुष्ठान करते रहते हैं, उसका आतिथ्य करने की जगह उसे शाप? आत्मस्थ होकर महर्षि ने देखा तो राजा का प्रारब्ध था नागविष से निधन। उन्होंने आश्रम से दो शिष्यों को राजा परीक्षित के पास शाप की सूचना और तक्षक-दंश से मृत्यु का संदेश प्रेषित किया। समाचार सुनकर से बिना खाये-पिये, राज्यसिंहासन छोड़ गंगा के तट पर बैठ गये। शुकदेव जी पधारे और श्रीमद्भागवत सुनाकर सात दिन में इनके मन और प्राण भगवान श्रीकृष्ण

पर परीक्षित नहीं, उनके निष्प्राण शरीर में उसका नागविष फैला। शरीर जलकर राख हो गया। एक बालयोगी ने शाप दिया मरने का, दूसरे बालयोगी ने मरने से बचाकर मृत्युंजयी बनाकर प्राणों को भगवदार्पित परीक्षित का करवा दिया। दोनों बालयोगियों–शृंगी और शुकदेव–भारतीय संस्कृति के अनुपम उदाहरण हैं। परीक्षित क्षत्रिय थे, इन्हें मृत्यु का भय नहीं था। एक दिन तो सबको मरना ही है। प्रश्न है, नाग विष से मृत्यु होने पर पचास हजार वर्ष तक प्रेत योनि में रहना होता उन्हें। उन्होंने ऐसा कोई पाप नहीं किया था, फिर ऐसा दंड क्यों? न्याय के सिद्धांतों की अग्नि–परीक्षा थी यह। भगवान श्रीकृष्ण को प्राण अर्पित कर योगचर्या द्वारा नागदंश से बिना मरे, प्राणों को पहले ही प्राणायाम द्वारा कृष्ण ध्यान में अर्पण कर परीक्षित मरे नहीं, मुक्त हुए और इस तरह भारतीय संस्कृति का एक अप्रतिम इतिहास बनकर उदाहरण के रूप में जगमगाते चले आ रहे हैं।

सम्राट बिम्बिसार

बिम्बिसार महात्मा बुद्ध के समकालीन थे। भण्डार भर इन्हें 'नागवंश' का जानते थे। अश्वघोष का 'बुद्धचरित' हर्षक कुल का वंशज बताता है। संभवत: वज्जि राजा का, जिसका मगध पर आधिपत्य था सेनापति थे ये। बौद्ध 'महाकंस' बिम्बिसार के पिता ने १५ वर्ष की आयु में इनका राज्याभिषेक किया था। अन्य स्रोतों से इनके पिता का नाम 'भट्टिय' या 'महापद्म' था। बिम्बिसार का शासनकाल ५४४–४९३ ई०पू० है। लगभग ४९ वर्ष शासन किया इन्होंने, राजगृह राजधानी थी। वज्जि, कोसल, अवन्ति शक्तिशाली राज्य इनके पड़ोसी थे। राज्यविस्तार थे। बिम्बिसार ने कूटनीति और सैन्यनीति दोनों का सहारा लिया।

राज्य–विस्तार में बिम्बिसार ने विवाह–सम्बन्धों के स्थापना की नीति विकसित किया। कहते हैं विवाह संबंधों से ५०० पत्नियाँ इनके अंतपुर में थीं। इनकी प्रधान पत्नी कोसलदेवी, कोसल नरेश प्रसेनजित की बहन थी। दहेज में काशीराज के कुछ भाग भी पाये थे। दूसरी पत्नी लिच्छविराज चटेक की पुत्री चेल्लना थीं। लिच्छवि राज्य सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य तब माना जाता था। इनकी तीसरी पत्नी विदेहराज की पुत्री वासवी थी। चौथी पत्नी क्षेमा मध्य पंजाब के भद्रशासक की पुत्री थीं। यह विवाह–नीति एक कूटनीति का सफल भाग थी बिम्बिसार के। अवन्ति नरेश चण्ड प्रद्योत के इलाज में अपने राज्य चिकित्सक आर्य जीव को भेजकर सद्भाव–सूत्र विकसित किये।

बिम्बिसार की मुख्य विजय अंगविजय थी जो समृद्ध राज्य था। अंग नरेश ब्रह्मदत्त ने बिम्बिसार के पिता को पहले हराया भी था। उसके उत्तर में बिम्बिसार

बिम्बिसार के राज्य की राजधानी गिरिव्रज थी, बाद में राजगृह को इन्होंने राजधानी बनाया। व्यवस्थित शासन की नींव मगध राज्य में बिम्बिसार ने रखी। सड़कें, नहरें बनवायीं। लगान वसूली के लिये नियुक्तियाँ कीं। बिम्बिसार के राज्य में ८० हजार गाँव बताये गये हैं। एक योग्य शासक बिम्बिसार थे। राज्यकर्मचारी तीन भागों में बँटे थे। शासनाधिकारी 'सम्बत्यक' कहे जाते थे। न्यायकर्त्ता 'वोहारिक' कहाते थे और सैन्याधिकारी 'सेनानायक' कहे जाते थे। अंगभंग, कोड़े लगाना, मृत्युदण्ड की दण्ड नीति प्रचलित थी।

ललित कलाओं के विस्तार के लिये भी बिम्बिसार ने सहयोग दिये। नगरों का निर्माण और भव्य भवनों के निर्माण में बिम्बिसार जाना जाता है। धार्मिक दृष्टि बिम्बिसार की उदार थी। जैनग्रंथ बिम्बिसार को जैनी और बौद्धग्रंथ बौद्ध मतावलम्बी बताते हैं। पर, बिम्बिसार दोनों ही मतों के प्रति आस्थालु थे। पुत्र कुणिक (अजातशत्रु) के हाथों मारे गये। जैन मत में अजातशत्रु ने बिम्बिसार को बन्दीगृह में डाल दिया। बाद में पश्चात्ताप में वह छुड़ाने जा रहा था कि भयवश बिम्बिसार ने विषपान कर आत्महत्या कर ली। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार अजातशत्रु ने भगवान बुद्ध के सामने अपने पाप स्वीकारे।

मगधराज अजातशत्रु

बिम्बिसार का वध कर पुत्र अजातशत्रु (शासनकाल-४९३ ई०पू०-४६२ ई०पू०) सिंहासनारूढ़ हुआ। मगध की नयी राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) का निर्माण आरम्भ किया। कोशलराज से युद्ध हुआ अजातशत्रु का। बिम्बिसार की पत्नी कोसल नरेश प्रसेनजित की बहन कोसलदेवी पति बिम्बिसार की मृत्यु के बाद शोकार्त्त प्राणोत्सर्ग कर दी। प्रसेनजित ने खिन्न होकर पितृघाती अजातशत्रु से बहन के दहेज में मिले काशी राज्य को वापस माँगा। इस पर युद्ध हुआ। प्रसेनजित को अजातशत्रु ने उनकी राजधानी सरस्वती तक पीछे धकेल दिया। पर, एक रणनीति में अकस्मात् आक्रमण कर प्रसेनजित ने अजातशत्रु को बन्दी बना लिया। फिर दोनों में सन्धि हो गयी। प्रसेनजित ने अजातशत्रु को काशीराज्य तो लौटाया ही, अपनी पुत्री वजिरा का विवाह भी अजातशत्रु से कर दिया।

अजातशत्रु ने लिच्छवि गणतंत्र को जीत लिया। इस संघ में ९ मल्ल राज्य, ९ लिच्छवि राज्य, १८ काशी एवं कोसल के गणराज्य आते थे। पूर्वी भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य था लिच्छवि गणसंघ।

मगध और लिच्छवियों की प्रतिस्पर्धा का समापन ४८४-४६८ ई०पू० के १६ वर्षों में हुआ। लिच्छवियों के प्रमुख राजा चेटक ३६ गणराज्यों के नेता थे।

चेटक ने वत्स, अवन्ति जैसे राजवंशों से पुत्रियों के विवाह-सम्बन्धों से शक्ति बढ़ा ली थी। रणभूमि के पास गंगा तट पर एक नया किला था अजातशत्रु ने युद्ध की तैयारी में बनवाया, जो बाद में 'पाटलिपुत्र' (पटना) महानगर के रूप में यशस्वी हुआ और आज बिहार प्रदेश की राजधानी है। अपने मंत्री वस्सकार को लिच्छवियों में फूट डालने के लिये अजातशत्रु ने तीन वर्ष तक वैशाली में रखा। इस लक्ष्य में सफलता भी मिली अजातशत्रु को। महाशिला 'कण्टक (पत्थर-प्रक्षेपी यंत्र) एवं 'रथमूसल' (ऐसे रथ जिसमें तीक्ष्ण धार के लोह-दण्ड लगे होते थे, जिसका संचालन उसमें छिपकर बैठा व्यक्ति करता था) जैसे नवीन शस्त्रों की तकनीक विकसित किया। अजातशत्रु विजयी रहे। लिच्छवि राज्य की स्वायत्तता तो रही, पर श्रेष्ठता जाती रही।

अवन्ति शासक चण्ड प्रद्योत इससे अजातशत्रु से चिढ़ा पर, चाहकर भी मगध पर आक्रमण नहीं कर सका। जैनी अजातशत्रु को जैनी कहते हैं। पहले अजातशत्रु बुद्ध-विरोधी थे, पर बाद में श्रद्धालु हो गये। अजातशत्रु के समय ही राजगृह के पास बौद्धों की पहली सभा हुई। अजातशत्रु ने बौद्ध चैत्यों का निर्माण करवाया।

अजातशत्रु के बाद पुत्र उदयभद्र ने शासन संभाला इन्होंने अवन्ति नरेश के पुत्र 'पालक' (प्रद्योत पुत्र) को कई युद्धों में हराया। पर, एक दिन प्रवचन सुनते समय 'पालक' के एक व्यक्ति ने इनका वध कर दिया। उदयभद्र के बाद अनुरुद्ध, मुण्ड, नागदाशक राजा हुए। बाद में शिशुनाग ने इन्हें सत्ताच्युत कर नागवंश की स्थापना किया। शिशुनाग ने ४३० -३६४ ई०पू० शासन किया मगध साम्राज्य पर। इसका अंतिम शासक कालाशोक था, जिसने पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनाया। कालाशोक का आन्तरिक षड्यंत्र में नन्दवंश के संस्थापक ने वध कर दिया। मगध में नन्दवंश के राज्य की स्थापना (३६४ ई०पू० से ३२४ ई०पू०) हुई, जिसका अन्त कर चाणक्य के नेतृत्व में चन्द्रगुप्त मौर्य ने मौर्यवंश की स्थापना की।

सिकन्दर महान

ग्रीस (यूनान) के एक छोटे राज्य के शासक सिकन्दर ने एक विशाल साम्राज्य निर्मित किया। अपने युग का यह श्रेष्ठतम सेनानायक था, जिसमें विश्वविजय की लालसा तरंगित थी। पर्शिया के सम्राट डेरियस-तृतीय अरबेला-युद्ध में ३३० ई०पू० में उससे हारकर भागा और अन्ततः मारा गया। सिंकन्दर ने सारे पर्शियन साम्राज्य को अपने नियंत्रण में लाकर विभिन्न जगहों पर नये नगरों की स्थापना और आत्मसुरक्षा सशक्त कर सिकन्दर (३३६-३२३ ई०पू०) ने ३२७ ई०पू० में भारत की ओर अपना मुंह मोड़ा।

३२७ ई०पू० में सिकन्दर ने खैबर दर्रा पार किया। सेना का एक भाग सेनापतियों की अध्यक्षता में पेशावर के मैदान की ओर बढ़ चला और दूसरा भाग सिकन्दर के नियंत्रण में उत्तर-पूर्व के पहाड़ी क्षेत्र की ओर अग्रसर हुआ। सबसे पहले अश्वक जाति ने बड़े साहस से सिकन्दर की सेना का सामना किया। पुरुषों के साथ स्त्रियों ने भी युद्ध में भाग लिया। कड़े संघर्ष में भीषण नरसंहार के बाद सिकन्दर विजयी रहा। सिकन्दर का दबदबा इतना बढ़ गया कि निसा के पहाड़ी राज्य ने आत्मसमर्पण में बुद्धिमानी समझा। पर, पुष्करावती राज्य ने जीने-मरने से आगे बढ़कर तूफान से टकराने में बुद्धिमानी मानी। ३० दिन भीषण युद्ध हुआ। पर, सिकन्दर की जीत हुई। तक्षशिला (सिन्धु और झेलम नदी के बीच के प्रदेश का राज्य) के शासक आम्भी ने सिकन्दर का अभिनन्दन किया। अपने शत्रु बड़े पोरस को विनष्ट करने के लिये सिकन्दर को आमंत्रित किया। उरशा के निकटवर्ती राज्यों ने सिकन्दर के नियंत्रण अंगीकार कर लिया। झेलम-रावी के बीच प्रदेशों के राजा बड़े पोरस ने सिकन्दर से युद्ध का निर्णय लिया, जबकि छोटे पोरस, जो बड़े पोरस का सम्बन्धी था, (चिनाव-रावी नदी के बीच वाले प्रदेशों का शासक), आंभी और पार्श्ववर्ती राज्यों ने सिकन्दर की अधीनता मानी और देशद्रोही हुए। अभिसार का शासक अविश्वसनीय था। झेलम के तट पर बड़े पोरस की सेना डट गयी। सिकन्दर एक रात अंधेरे का सहारा लेकर उत्तर की ओर बढ़ा और झेलम पार कर लिया। पोरस के पुत्र के नेतृत्य में पोरस-सेना हटने को बध्य थी। पोरस स्वयं रणभूमि में आ गये। प्रातः वर्षा से भींगी भूमि में भयानक युद्ध पोरस-सिकन्दर की सेनाओं में हुआ। भूमि पर रखकर पोरस सेना के तीर-कमानों का संचालन वर्षा के चलते त्वरित नहीं हो पा रहा था। उधर घुड़सवार कीचड़ में भी सिकन्दर के तेजी से रणभूमि में लपकते रहे। इन सबकी चोट से पोरस के हाथी आहत हुए और पीछे की ओर अपनी ही सेना को रौंदते भाग चले। पोरस को ९ घाव लगे। वे हार गये। सिकन्दर के सामने लाया गया। सिकन्दर ने पूछा-'तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाय?' बन्दी-आहत पोरस ने कहा-'जैसा राजा राजा के साथ करते हैं।' सिकन्दर इस साहस और निर्भीकता पर दंग रहा। पोरस को छोड़ दिया, राज्य वापस कर दिया, कुछ अन्य प्रदेश भी दिये और मित्र बना लिया पोरस महान् को। आम्भी देखता रह गया। छोटा पोरस अपना राज्य छोड़ भाग गया और अहष्ट और कठ के गणतंत्रों को सिकन्दर ने हरा दिया। व्यास नदी के तट तक पहुँची सिकन्दर की सेना इन छोटे राज्यों के जुझारूपन से हताश और सुदृढ़ मगध साम्राज्य से टकराने से कतराने लगी। घर याद आ रहे थे सबको। हथियार बेकार हो गये थे, कुछ सैनिक बीमार भी थे। सिकन्दर इनमें साहस पैदा नहीं कर सका।

वह सेना के दो भाग कर वापस लौट पड़ा। झेलम-व्यास के क्षेत्र बड़े पोरस को, सिन्धु-झेलम के प्रदेश आंभी को, कश्मीर-उरशा के प्रदेश अभिसार को प्रदान कर दिया सिकन्दर ने। नवंबर ३२६ ई०पू० को झेलम के जल मार्ग से सिकन्दर स्वयं लौटा और सेना नदी के दोनों ओर चल पड़ी। सेनापति फिलिप पिछली रक्षा पंक्ति को संभालता साथ चला। झेलम चिनाव के संगम पर, जैसे ही वह पहुँचा शुद्रक, मालव, अम्बष्ठ, मुचिकर्म, शम्भु जातियों के गणराज्यों के कड़े संघर्षों से वह घिर गया। सिकन्दर क्षति पर क्षति उठाता रहा। पट्टल पहुँचकर उसने सेना को समुद्री मार्ग से बढ़ने का आदेश दिया और स्वयं थल मार्ग से वापसी को चला। सितंबर ३२५ ई०पू० मं सिकन्दर भारत छोड़ बेबीलोन पहुँचा। वह घायल था। बेबीलोन में ३२३ ई०पू० में वह चल बसा और मातृभूमि नहीं पहुँच सका।

चन्द्रगुप्त मौर्य

सम्राट चन्द्रगुप्त का जन्म ३२४ ई.पू. एवं निधन ३०० ई.पू. में हुआ था। एक साधारण व्यक्ति के रूप में बचपन का चन्द्रगुप्त एक महान सम्राट और साम्राज्य निर्माता हुए। ग्रीक लेखक जस्टिन इन्हें साधारण कुल का, जैनग्रंथ ग्रामप्रधान का पुत्र, जहाँ मोरों की संख्या प्रधान थी और विशाखदत्त की मुद्राराक्षस में निम्न कुल का मानते मिलते हैं। चन्द्रगुप्त को 'वृषल' कहा गया है, जिसका तात्पर्य 'धर्मच्युत क्षत्रिय' हैं। चन्द्रगुप्त हीनकुल या शूद्र होते तो चाणक्य इन्हें न स्वीकारते, क्योंकि शूद्र घनानन्द के मूलोच्छेद के प्रति दृढ़प्रतिज्ञ थे। शूद्र को हटाकर शूद्र के हाथ में चाणक्य शासन न सौंपते। ब्राह्मण क्षत्रिय हाथ में ही शासन होने के पक्षधर रहे हैं। 'महव वंस' जैसे बौद्धग्रंथ और अन्य जैनग्रंथ इन्हें क्षत्रिय मानते हैं। उत्तर प्रदेश के पल्लिवन में शासन करने वाले 'मोरिय' क्षत्रिय वंश के चन्द्रगुप्त कहे जाते हैं। इनकी मां पति के निधन पर सुरक्षा हेतु पाटलिपुत्र चली गयीं, जहाँ चन्द्रगुप्त का जन्म हुआ। पहले एक ग्वाले ने बाद में एक शिकारी ने इनका पालन किया। शैशवकाल में बालमंडली के साथ सम्राट और न्याय के खेल जब ये खेल रहे थे तो चाणक्य उधर से होकर जाते हुए देखे-सुने और बड़े प्रभावित हुए। चाणक्य चन्द्रगुप्त को शिक्षित करने के लिए तक्षशिला ले आये, जहाँ के ये कुलपति थे। ८ वर्ष तक यहाँ विशेष शिक्षा पाये। ग्रीक आक्रमण में से देश की रक्षा और अयोग्य घनानन्द के नन्द साम्राज्य का उच्छेद इनका संकल्प था। चन्द्रगुप्त की भेंट सिकन्दर से भी हुई थी। इनकी स्पष्टवादिता से इन्हें मार डालने का आदेश सिकन्दर ने दिया, पर चन्द्रगुप्त

तक चला गया था वापस, जब युद्धप्रिय जनजातियों को सेना में भर्त्ती चाणक्य-चन्द्रगुप्त ने करना आरंभ किया। विदेशी यूनानी भारत से निकाले जायं - ऐसा आदर्श एक जनसामान्य के सामने रखा गया। इसमें एक पहाड़ी पर्वतक से बड़ी सहायता मिली। उधर यूनानी भी अपने देश जाने के लिये लालायित थे ही। भारतीय क्षत्रियों ने भी यूनानियों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। ३२५ ई.पू. में उत्तरी सिन्ध के यूनानी क्षत्रिय फिलिप की हत्या और ३२३ में सिकन्दर के निधन ने चन्द्रगुप्त के लक्ष्य को शक्ति दी। सारे यूनानी पंजाब से निकाल दिये गये। ३१६ ई.पू. अंतिम यूनानी क्षत्रप भी चला गया भारत से। सारे सिन्ध-पंजाब में चन्द्रगुप्त का अधिकार हो गया। अब मगध की ओर मुड़े चन्द्रगुप्त। आन्तरिक विद्रोह, कुचक्र, की कड़ियाँ बनाकर दो-एक बार की असफलता के बाद अंततः चन्द्रगुप्त ने भीषण प्रत्यक्ष युद्ध में घनानन्द का वध कर मगध पर अधिकार कर लिया। ३०५ ई.पू. में सेल्यूकस से इनका युद्ध हुआ। सेल्यूकस हारा और अपनी बेटी हेलन का इनसे विवाह कर दहेज में भारत के उत्तर-पश्चिम के सारे क्षेत्र सौंप दिये, जिनकी राजधानियाँ हिरात, कान्धार और काबुल थीं। बलूचिस्तान भी इनमें था। आज का सारा अफगानिस्तान बलूचिस्तान, पर्शिया (ईरान) चन्द्रगुप्त के राज्य में मिल गया। जूनागढ़ के रुद्रदामन अभिलेख से पता चलता है सौराष्ट्र (गुजरात) में चन्द्रगुप्त का प्रान्तपति शासक था। मालवा, अवन्ति के प्रदेश, इनकी राज्यसीमा में थे। तमिल साक्ष्यों से पता चलता है दक्षिण भारत के अधिकांश हिस्से इनके शासन में थे। बिन्दुसार को लड़ाई करनी नहीं पड़ी। अशोक केवल कलिंग जीता। इससे पता चलता है सारे भागों पर चन्द्रगुप्त ने शासन का विस्तार पहले ही कर दिया था। केवल, कर्नाटक, ट्रावनकोर, मदुरा, कुर्ग, दक्षिणी कन्नड़, दक्षिणी मैसूर और आसपास के क्षेत्रों (चदेल और पाण्ड्य शासकों) को छोड़ सारे दक्षिण भारत पर चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन था।

अंतिम समय में, जैन साक्ष्यों के अनुसार जैनमुनि भद्रबाहु के साथ चन्द्रगुप्त मौर्य मैसूर आ गये और श्रावणबेल गोला में अनशन कर देहत्याग दिया। उस स्थान को 'चन्द्रगिरि' कहा जाता है। वहीं चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा बनवाया हुआ 'चन्द्रगुप्त बस्ती' नामक एक मन्दिर भी है। सामान्य व्यक्ति की तरह आरंभ कर सम्राट के रूप में जीवन व्यतीत करने वाले चन्द्रगुप्त का स्वेच्छया अंतिम दिन भी साधारण रूप में ही बीता।

सम्राट अशोक महान

सम्राटों के महानतम सम्राट अशोक अपने साम्राज्य की विशालता के साथ-साथ अपने चरित्र, आदर्श और सिद्धान्तों के लिए आज भी जनप्रिय हैं। हर युग, हर राष्ट्र ऐसे सम्राट को जन्म नहीं दे सकता।

अभी १५० वर्ष पहले तक अशोक मौर्य सम्राटों में बहुत महत्वपूर्ण नहीं थे। १८३७ ई. में प्रिंसप ने ब्राह्मी लिपि में लिखित एक अभिलेख में 'देवनामपियदसी' उपाधि के एक राजा का वर्णन पढ़ा। अन्य अभिलेखों में भी इस उपाधि से राजा के विवरण मिले। १९१५ में 'अशोक पियदसी' नाम के राजा का पता चला। सम्राट अशोक को ही यह उपाधि मिली थी। श्रीलंका के बौद्धग्रंथ 'महावंश' में अशोक को पियदर्शी कहा गया है। इस प्रकार सम्राट अशोक पर विवरण बढ़ते चले गये।

बौद्ध जनश्रुति के अनुसार अशोक ने अपने ९९ भाइयों को मार डाला, तब गद्दी पाया। पर, यह अतिशयोक्ति है। इतने भाई कहाँ से हो जायेंगे? हाँ भाई से संघर्ष अशोक का अवश्य हुआ। अशोक का पूर्व नाम चण्डाशोक था। ये पहले शैव थे।

अशोक ने एक युद्ध जीता - वह कलिंगयुद्ध था। शासन के आठवें वर्ष में कलिंग पर आक्रमण अशोक ने किया। अशोक ने इस युद्ध के बाद युद्ध-भेरी को धर्म-भेरी के रूप में परिवर्त्तित कर दिया और भविष्य में कोई युद्ध न करने का व्रत लिया। श्रीलंका के साथ अशोक के संबंध मधुर थे। नेपाल के एक कुलीन सरदार से अशोक ने अपनी पुत्री का विवाह किया। सीरिया के शासक अष्टिओकस थियोज, सेल्यूकस के प्रपौत्र प्लोटेमी तृतीय, मिश्र के शासक फिलो डेलफस, मेसीडोनिया के शासक एण्टीगोनस इजिट्स के शासक एलेक्जेण्डर के साथ मित्रता के सम्बन्ध थे।

अशोक ने खरोष्ठी लिपि और ब्राह्मी लिपि में, कहते हैं चौरासी हजार अभिलेख स्थापित किये। ये सारे अभिलेख निम्न वर्गों में रखे जा सकते हैं -

(१) चौदह शिलालेख - पेशावर, हजारा, गिरनार (काठियावाड़), देहरादून, थाना (मुम्बई), फौली, जौगढ़ (उड़ीसा) कुर्नूल जिलों में १४ संख्या में ये मिलते हैं।

(२) लघुशिलालेख - वैराट (जयपुर) रूपनाथ (जबलपुर), सहसाराम (बिहार), मस्की (रायपुर), मैसूर में पाँच स्थानों पर, गुज्जरा (मध्यप्रदेश), कुर्नूल में एक स्थान पर उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में एक स्थान पर और एक आन्ध्रप्रदेशों में मिले हैं, जिनकी संख्या ३ है।

(३) सात स्तम्भलेख - भारत में अलग-अलग सात स्थानों पर मिले हैं, जिनमें से एक स्तम्भलेख फिरोजशाह तुगलक दिल्ली लाया था।

(४) अन्य अभिलेख - तक्षशिला, लुम्बिनीवन, जलालाबाद, बारबा आदि स्थानों पर ये अभिलेख पाये गये हैं।

अशोक प्रजावत्सल धर्मनिष्ठ सम्राट थे। शिकार आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इनके उत्तराधिकारी थे - कुणाल, जो इन्हीं की तरह महान थे, पर स्वयं को अन्धा कर लिये। दशरथ, सम्प्रति, शालिशूक देववर्मा, शतधन्वा, वृहद्रथ इनके उत्तरकालीन मौर्य सम्राट हुए।

सम्राट कनिष्क महान्

कनिष्क महान् का जन्म ७८ ई० और निधन १०१ या १०२ ई. में हुआ। कुषाण सम्राट कदफिस के पूर्वी भारतीय साम्राज्य के प्रान्तपति या क्षत्रप थे कनिष्क। वेम कदफिस की मृत्यु के बाद उसके क्षत्रपों में संघर्ष बढ़ गया, जिसमें कनिष्क विजयी रहे। इन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार उत्तर प्रदेश से किया। कनिष्क ने शक संवत् चलाया। इनका साम्राज्य पूर्व में बिहार से पश्चिम में खोरासान तक, उत्तर में खोतान और कश्मीर से दक्षिण में कोंकण तक विस्तृत था। अधिकतर भाग कनिष्क ने अपने बाहुबल से अर्जित किया था। सिंहासन पर बैठने के समय इनके राज्य में मात्र मध्येशिया के कुछ हिस्से, अफगानिस्तान और सिन्ध के छोटे से भाग ही थे। बाद में बंगाल के अतिरिक्त सारा उत्तर भारत, दक्षिण-पश्चिमी भारत के कुछ हिस्से, भारत के बाहर मध्येशिया के भाग आते थे। इनके राज्य की सीमायें चीन और ईरान राज्य की सीमायें छूती थीं। कनिष्क की सेना को चीनी सेनापति पनचाओ ने हराया और मध्येशिया के कुछ हिस्सों पर कब्जा कर लिया। चीन के विरुद्ध जारी जंग में कनिष्क अपने विद्रोही सैनिकों और सरदारों द्वारा मार दिये गये, जो उनके युद्धों से ऊब चुके थे। इनकी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी। अन्य स्थानों पर इनके क्षमप (प्रान्तपति) शासन करते थे। उत्तर पश्चिम भारत में 'नल', 'खरमल्लान', कौशाम्बी में 'वनस्पर' और अयोध्या में धनदेव क्षमप रूप में शासन करते थे।

संस्कृत भाषा और साहित्य की प्रगति का युग है कनिष्क-काल। आधुनिक इतिहासकारों की दृष्टि में वसुमित्र, अश्वघोष, नागार्जुन, चरकसंहिताकार इनके दरबार की निधियाँ थे। महायान सम्प्रदाय के विभिन्न ग्रंथों की रचना कनिष्क के समय हुई। कश्मीर या जालन्धर में बौद्धों की चौथी सभा कनिष्क के समय हुई। महान बौद्ध शाखा महायान सम्प्रदाय का निर्माण इनके समय हुआ। सम्राट अशोक ने हीनयान सम्प्रदाय में और कनिष्क ने महायान सम्प्रदाय में समर्पित एक दूसरे जैसा योगदान दिया। कनिष्क का साम्राज्य मध्येशिया तक विस्तृत था, जिसके चलते चीन, रोमन साम्राज्य और पश्चिमी एशिया के साथ इनके राजनीतिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध थे। भारत की विदेशी व्यापार में भारी उन्नति इनके समय हुई। 'त्रिपिटकों' पर अनेक टीकायें लिखी गयीं इस समय। अश्वघोष ने 'सौन्दरानन्द' काव्य, 'बुद्ध चरितम्' और सारिपुत्र प्रकरण, कनिष्क के शासनकाल में लिखा। कनिष्क एक महान सम्राट थे।

सम्राट समुद्रगुप्त

३४० ई० से ३८० ई० के मध्य उत्तर भारत के महान् सम्राट समुद्रगुप्त का प्रताप दमक रहा था। चन्द्रगुप्त प्रथम (३२० ई. से ३३५ या ३४० ई.) के पुत्र समुद्रगुप्त भाइयों में छोटे थे, फिर भी सबमें योग्यतम थे। बन्धु-संघर्ष से बचाने के लिये गुप्त-साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने जीवनकाल में ही राजदरबार में समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था, फिर भी सिंहासनारोहण में भाइयों ने विद्रोह कर दिया, जिसे समुद्रगुप्त ने निष्फल कर दिया और साम्राज्य विस्तार की नीति तैयार किया। प्रयाग (इलाहाबाद) के अभिलेख में समुद्रगुप्त के जीवन की ओजस्वी आख्या प्रस्तुत है।

सर्वप्रथम समुद्रगुप्त ने गंगा-यमुना के दोआब के राज्यों को जीता। ये वे ही राज्य थे, जिन्होंने इनके भाइयों को उकसाकर गृह-कलह से गुप्त-साम्राज्य को विनष्ट करना चाहा था। इस क्रम में अहिछत्र के अच्युत, पद्मावती के गणपति नागसेन, मथुरा के नागसेन, बाँकुरा (बंगाल) के चन्द्रवर्मन, नागदत्त, रुद्रदत्त, नन्दि, बलवर्मन, कोटा के राजा को हराकर गुप्त साम्राज्य में सबको विलीन कर लिया। इन ९ राज्यों की विजय से बंगाल से उत्तर प्रदेश तक गुप्त राज्य में आ गये। इसके बाद दक्षिण भारत के लिये इन्होंने विजय-अभियान आरंभ किया। इन्होंने मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले के जंगलों से गुजरते हुए दक्षिण भारत में प्रवेश किया। यह भी हो सकता है कि वे सम्भलपुर होकर पूर्वी समुद्र तट के साथ आगे बढ़े। इस अभियान में नौसेना की भी सहायता ली। सुदूर दक्षिण के पल्लव राज्य हार गये। सारे दक्षिण पूर्व तट के शासकों को हराकर १२ राज्यों को पराभूत किया इन्होंने। इनमें महाकान्तार के राजा व्याघ्रराज, कौसल (दक्षिण कौशल) के राजा महेन्द्र, कोसलराज मण्टराज, प्रिष्टपुर के राजा महेन्द्रगिरि, एरन्दपल्ल के राजा दमन, कोट्टूटर के राजा स्वामिदत्त, काँचीराज विष्णुप्रमेय, वेंगीराज हस्तिवर्मन, अवमुक्तराजा नीलराज पलस्क नरेश उग्रसेन, देवराष्ट्र के राजा कुबेर और कुस्थलपुर के राजा धनंजय थे।

समुद्रगुप्त ने १८ जंगली राज्यों पर अपना स्वामित्व स्थापित किया। उत्तर प्रदेश के गाजीपुर से लेकर मध्य प्रदेश के जबलपुर तक के वन्य प्रदेश इस अभियान में सम्मिलित थे। उत्तर, उत्तर-पूर्व के ५ राज्यों ने समुद्रगुप्त का स्वामित्व स्वीकार किया। पूर्वी बंगाल के सिन्धु तट के राज्य, देवाक (असम) कामरूप (असम) जालन्धर, कर्त्तपुर (कुमायूँ, गढ़वाल और रुहेलखण्ड के जिले) एवं नेपाल सम्मिलित थे। उत्तर-पश्चिम के ९ राज्यों ने समुद्रगुप्त की अधीनता मान लिया। ये राज्य थे मालवा, यौधेय, अर्जुनायन, मद्रक, प्रर्जुन, आभीर, सनकानिक, काक और खरपटिक। कूटनीतिक दूरदर्शिता में व्यावहारिक समस्याओं को समझकर दूरस्थ दक्षिण के राज्यों को अपना स्वामित्व स्वीकार कराकर उनके राज्य समुद्रगुप्त ने उनको वापस कर दिये। इन अधीनस्थ शासकों को समय-समय पर दिये गये

आदेशों को मानना होता था और कभी कभी सम्राट समुद्रगुप्त के दरबार में उपस्थित भी होना पड़ा था। कुछ ने अपनी पुत्रियों के विवाह समुद्रगुप्त से किये और कुछ ने अपने सिक्कों पर समुद्रगुप्त के नाम उत्कीर्ण कराये। इसके अतिरिक्त समुद्रगुप्त के संबंध अन्य भारतीय और विदेशी राज्यों से मधुर थे। कुषाण राज्य, शक राज्य, श्रीलंका और दक्षिण पूर्व एशिया के राज्यों जावा, सुमात्रा से समुद्रगुप्त के संबंध सम्मानजनक थे।

सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य

३८० ई० से ४१३ या ४१५ ई० के बीच सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का शासन था। ये सम्राट-समुद्रगुप्त की रानी दत्तदेवी के पुत्र थे। लोककथाओं में उज्जयिनी के राजा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य यही थे। महान कवि कालिदास इनके नवरत्नों में एक थे। विशाख दत्त के 'देवीचन्द्रगुप्तम्' एवं इन पर निर्भर बाणभट्ट के 'हर्षचरित', राजशेखर की 'काव्यमीमांसा' के अनुसार समुद्रगुप्त के बाद इनके ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त शासनारूढ़ हुए, जिनकी पत्नी ध्रुवस्वामिनी थीं। शकों से संघर्ष में उलझकर रामगुप्त ने रूपसी रानी ध्रुवदेवी को शकराज को देना और युद्ध से बचना स्वीकार कर लिया था। पर, चन्द्रगुप्त ने स्त्रीवेश में पालकी में जाकर शकराज का वध किया और रामगुप्त को मारकर ध्रुवदेवी से विवाह किया और गद्दी पर बैठे। पर, यह कथा पूर्ण भरोसेमन्द नहीं है। भला जुझारू सम्राट समुद्रगुप्त का पुत्र इतना कायर कैसे हो सकता है? उस युग की नैतिकता में चन्द्रगुप्त जैसा नैतिक व्यक्ति बड़े भाई का हत्यारा और उसकी विधवा से विवाह करने का अनैतिक कार्य कैसे कर सकता है? पर, कोई साक्ष्य और सबूत स्पष्ट नहीं है। हाँ हो सकता है, रामगुप्त समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी थे, जो दुर्बल थे, उनकी हत्या हो गयी, जिसमें चन्द्रगुप्त का हाथ न रहा हो, बाद में शासन सूत्र उन्हें संभालना पड़ा हो और पति के निधन पर विधवा ध्रुवस्वामिनी ने धर्मस्वामिनी के निर्देशन में इन्हें अपना पति वरण किया। ध्रुवस्वामिनी रूपसी तो थीं ही, एक प्रभावशाली महिला थीं, अतः विधवा रूप में उन्हें चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की प्रेमनिष्ठा ने वैधव्यवाहिनी न रहने दिया हो। हिन्दू धर्म की मान्यता में उस समय भी विधवा विवाह होते थे।

चन्द्रगुप्त ने बंगाल जीता। शकों का उन्मूलन किया। उत्तर-पश्चिम भारत में कुषाण और गुजरात-काठियावाड़ प्रदेश में शक राज्य थे। ४०९ में चन्द्रगुप्त ने शकराज रुद्रसिंह तृतीय को हराकर उनका राज्य गुप्त साम्राज्य में मिल गया। अब पश्चिमी के सिन्धु तट और पश्चिमी देशों से व्यापार के केन्द्र स्थानों पर इनका कब्जा हो गया। बलख (बैक्ट्रिया) से लेकर पूर्व में पूर्वी बंगाल तक, निकटवर्ती बंगक्षेत्र जीतकर गुप्त साम्राज्य में विलीन कर दिये गये। चन्द्रगुप्त ने अश्वमेध एवं राजसूय यज्ञ किये।

चन्द्रगुप्त ने भारत के मुख्य राजपरिवार से विवाह संबंध स्थापित किये।

नागवंश की राजकुमारी कुबेर नागा से चन्द्रगुप्त ने स्वयं विवाह किये। अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह वाकाटक शासक रुद्रसेन द्वितीय से किया। शकों को हराने में इससे सहायता मिली। कुन्तल राज्य के कदम्ब शासकों से भी वैवाहिक संबंध जुड़े थे। कुन्तल राजकन्या का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ हुआ था।

कला, साहित्य, धर्म सभी दृष्टियों से चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के कार्यों ने जनता में समुद्रगुप्त की स्मृतियाँ धूमिल कर दिया और जन-जन के हृदय का सम्राट चन्द्रगुप्त सम्राट हो गये। ताम्बे और चाँदी के सिक्के भी चन्द्रगुप्त जारी किये। सोने की मुद्रायें भी चलायीं। पिता समुद्रगुप्त के सिक्के पर उन्हें चीते से लड़ते दिखाया गया है, क्योंकि उनके राज्य में सिंह उपलब्ध नहीं थे। पुत्र चन्द्रगुप्त सिंह से लड़ते मुद्रांकित हैं क्योंकि सौराष्ट्र विजय से उन्हें सिंह का शिकार करने की सुविधा मिल गयी। वीणापाणि रूप में भी चन्द्रगुप्त मुद्रांकित हैं। किसी मुद्रा में प्रसाद लेते, किसी में अश्वारूढ़ मुद्रा है। इनका धर्म, शौर्य और संगीत प्रेम इन सिक्कों के संकेत देते हैं चन्द्रगुप्त के इतिहास पर। चन्द्रगुप्त एक महान् सम्राट थे।

सम्राट स्कन्दगुप्त

सम्राट समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के पुत्र कुमारगुप्त के पुत्र सम्राट समुद्रगुप्त एक महान विजेता और शासक थे। इनका शासनकाल ४५५ ई० से ४६७ ई० रहा है। भितरी स्तंभलेख चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय की पट्ट राजमहिषियों के नाम अंकित हैं, जबकि कुमारगुप्त की प्रथम रानी का नाम नहीं दिया गया है। इससे लगता है स्कन्दगुप्त सम्राट कुमार गुप्त की पट्ट राजमहिषी का पुत्र न होकर किसी अन्य रानी के पुत्र रहे हों। इसी से सिंहासनारूढ़ होते समय इन्हें सर्वत्र विरोधों के संकट का सामना करना पड़ा। संकट क्या था - पता नहीं चलता। भाइयों के साथ संघर्ष का संकट था या प्रांतपतियों के विद्रोह का संकट था या हूणों के आक्रमण का संकट था—स्पष्ट नहीं है। यह अवश्य स्पष्ट है कि स्कन्दगुप्त ने संकट पर विजय प्राप्त किया। राज्यारोहण स्कन्दगुप्त का संघर्ष के बीच हुआ—यह भी स्पष्ट ही है।

एक महान योद्धा के रूप में स्कन्दगुप्त ने दक्षिण के पुष्य मित्रों को पराभव दिया। वाकाटक नरेशों से झगड़ा था ही। हूणों से युद्ध की व्यस्तता के चलते सम्भवत: वाकाटक नरेश नरेन्द्रसेन ने मालवा को कब्जे में ले लिया। स्कन्दगुप्त ने इसके अलावा राज्य की सीमायें सुरक्षित रखा। हूणों ने तब सारे एशिया और यूरोप को भयभीत कर रखा था, उन्हें स्कन्दगुप्त ने ४६० ई० में गंगा तट की उत्तरी घाटी के पास किसी स्थान पर इतना हरा दिया कि आगामी ५० वर्षों तक हूणों की आक्रामक शक्ति जाती रही। बर्बर हूणों से भारत रक्षा का महान कवच स्कन्दगुप्त हो गये। जूनागढ़ अभिलेख में हूणों के क्रूर दमन का उल्लेख है। भितरी और कहोप अभिलेखों के मत में स्कन्दगुप्त

की सत्ता स्वीकार किया अनेक नरेशों ने। जूनागढ़ अभिलेख में स्कन्दगुप्त दयालु, विचारशील, जनहितकारी और प्रजावत्सल थे। आर्य मंजुश्रीकल्प के अनुसार स्कन्दगुप्त मेधावी थे। गिरनार पर्वत पर 'सुदर्शन' झील का पुनरुद्धार स्कन्दगुप्त ने करवाया, जिससे पड़ोसी राज्यों के किसान को भी पानी मिलने लगा। युवान च्वांग के अनुसार नालन्दा संघाराम के निर्माण में शक्रादित्य शासक ने योगदान दिये। शक्रादित्य स्कन्दगुप्त प्रमाणित होता है। सुदर्शनझील में बहुत धन व्यय किया स्कन्दगुप्त ने। सौराष्ट्र के गुप्त राज्य के सूबेदार पर्णदत्त ने झील निर्माण कार्य की देखरेख किया। अब इस झील ने अवशेष भी खो दिये। हूणों का दमन करने वाले स्कन्दगुप्त यूरोप और ऐशिया के प्रथम प्रतापी व्यक्तित्व थे।

सम्राट हर्षवर्द्धन

५९० ई० में महान् संम्राट हर्षवर्द्धन का जन्म हुआ था। इनका शासनकाल ६०६ ई० से ५४७ ई० तक था। पुष्यभूति वंश के प्रतापी राजा प्रभाकरवर्धन हुए, जिनके दो पुत्र राज्यवर्धन और हर्षवर्द्धन थे और एक पुत्री राजश्री थीं। राज्यश्री का विवाह मौखरिराज ग्रहवर्मा के साथ हुआ था। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु ६०५ ई० में हो गयी और थानेश्वर की गद्दी पर ज्येष्ठ पुत्र राजवर्धन बैठे। अभी ये गद्दी पर बैठे ही थे कि बंगाल के राजा शशांक और मालवा के राजा देवगुप्त ने मिलकर इनके बहनोई मौखरिराज ग्रहवर्मा का वध कर बहन राज्यश्री को कैद में डाल दिया। राज्यवर्धन ने मालवा पर बड़ी सेना लेकर धावा बोल दिया और शत्रुओं को हराकर छोड़ा और राज्यश्री के लिए कन्नौज बढ़े। रास्ते में ही शशांक ने धोखे से इनका वध कर दिया। राज्यश्री गुप्त नामक एक व्यक्ति की मदद से कारागार से मुक्त होकर पति और भाई के निधन से दुःखी विन्ध्य के जंगलों में चली गयीं। इन्हीं हृदयविदारक घटनाओं के बीच हर्षवर्धन गद्दी पर बैठे।

सर्वप्रथम हर्षवर्धन ने बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र के सहयोग से बहन राजश्री का पता लगाया। बहन के पास पहुँचे, तब तक चिता जलाकर बहन उसमें कूदना ही चाहती थीं। हर्ष ने उसे समझाया और किसी तरह वापस लौटाया। हर्ष के बहनोई का हत्यारा शशांक भयभीत होकर बंगाल भाग चला। बहन के मंत्रियों के अनुरोध पर हर्षवर्धन ने बहन के अनाथ हो चुके राज्य कन्नौज का भी शासन भार संभाला। कन्नौज को हर्षवर्धन ने अपनी राजधानी बना लिया।

हर्ष का अगला अभियान बहनोई के हत्यारे शशांक के विरुद्ध हुआ। रास्ते में कामरूप के शासक भास्कर वर्मा का एक दूत मिला, जिसने संधि का एक प्रस्ताव रखी। भास्कर वर्मा एवं शशांक परस्पर वैरी थे। हर्ष ने लाभ उठाया और भास्कर वर्मा के साथ संधि कर लिया। हर्ष ने बहन को वापस बुला लिया

था विन्ध्य वन से, अब बंगाल पर हमला किया। भास्कर वर्मा ने हर्ष की सहायता की। प्रारंभिक चरण में विशेष सफलता नहीं हुई। ६३७ ई० तक शशांक बंगाल के अधिकतर भागों और उड़ीसा पर शासन करता रहा। शशांक की मृत्यु के बाद हर्ष और भास्कर वर्मा ने बंगाल पर फिर हमला किया और कब्जा पाने में सफलता पायी। भास्कर वर्मा ने पूर्वी बंगाल और हर्ष ने पश्चिमी बंगाल पर कब्जा कर लिया। मगध और उड़ीसा पर भी हर्ष ने कब्जा कर लिया। हर्ष ने शासनारूढ़ होने के ६ वर्ष बाद कन्नौज पर कब्जा किया। राज्यवर्धन के निधन पर बंगाल के शशांक ने किसी गुप्त वंशीय व्यक्ति - (शायद देवगुप्त के भाई सूरसेन) को कन्नौज का शासक बना दिया था। हर्ष ने उससे कन्नौज का उद्धार किया और राज्यश्री की ओर से शासन किया कन्नौज पर। ६ वर्षों में अपनी स्थिति को सुदृढ़ कर कन्नौज को अपने राज्य में विलीन कर लिया। हर्ष ने गुजरात के शासक ध्रुवसेन-द्वितीय पर ध्रुवभट्ट को हराया, बाद में ध्रुवसेन ने गुर्जर और अन्य पार्श्ववर्ती शासकों की सहायता से सुदृढ़ हो गया। अपनी पुत्री से हर्ष ने विवाह ध्रुवसेन से कर दिया और शत्रुता समाप्त हो गयी। वल्लभी (गुजरात) के शासक हर्ष के अधीन आ गये। चालुक्य शासक पुलकेशिन-द्वितीय से नर्मदा नदी के निकट या उत्तर में युद्ध हर्ष का ६३०-६३४ के बीच किसी समय हुआ। हर्ष जीते नहीं। ६४३ ई० में गंजम जिले के घोंगोडा नामक स्थान पर कब्जा हर्ष का पुलकेशिव-द्वितीय की मृत्यु के बाद हुआ। अपने शासन काल में हर्ष ने कुंभ मेले में सब कुछ दान में अर्पित कर बहन राज्यश्री की आधी साड़ी की लुंगी पहन कर शरीर के वस्त्र भी दान कर दिये थे। ऐसे महान सम्राट थे हर्षवर्धन।

राजाभोज

राजा भोज को वन में विपत्ति पड़ी। भूजी मछली जल में गिरी, जैसी कहावत वाले भोज यही राजा भोज थे, जो परमार वंश के प्रमुख ६ शासकों में चौथे महान् यशस्वी राजा थे। परमार राजपूत 'पवार' नाम से भी विख्यात हैं। इस वंश के संस्थापक उपेन्द्र या कृष्णराज राष्ट्रकूटों के सामन्त थे। इसके बाद मुंज (९७३-९९५ ई०) प्रतिभाशाली सम्राट के बाद राजा भोज (१०१८ से १०६० ई०) एक जनप्रिय शासक थे। परमारवंश के सर्वश्रेष्ठ शासक राजा भोज थे। इन्होंने कल्याणी के चालुक्यों को हराया। इसके बाद इन्होंने कलचुरी राजा गांगेय देव को परास्त किया। इनका शासन उदारता और जनप्रियता के उच्चशिखर पर था। पर, चालुक्य राजा सोमेश्वर प्रथम आह्वमल्ल ने राजा भोज को हरा दिया और मालवा और इनकी राजधानी धार को लूटकर बर्बाद कर दिया। यही वे दिन थे, जो भारतीय लोककथाओं में राजा भोज के दुर्दिन रूप में प्रसिद्ध हैं। दन्तकथाओं में प्रसिद्ध है कि राजा भोज ने पुनः शीघ्र ही अपना खोया हुआ राज-पाट वापस पा लिया। इतिहास का यह तथ्य है कि राजा भोज ने पुनः अपनी प्रतिष्ठा वापस पा लिया। इन्होंने भीम प्रथम की अनुपस्थिति

में अह्लिलवाड़ को जमकर लूटा। इससे कुपित भीम प्रथम ने कलचुरि राजा लक्ष्मीकर्ण की मदद से दुतरफा राजा भोज के राज्य पर भयानक हमला किया। युद्धकाल में ही भोज का निधन हो गया। मैरचुंग के अनुसवार राजाभोज ने ५५ वर्ष सात महीने तीन दिन तक शासन किया।

राजाभोज विद्याप्रेमी और दानवीर थे। इनके रचित २८ ग्रंथ आज तक मिलते हैं। इनमें हैं – 'सरस्वती कण्ठाभरण', 'शृंगारप्रकाश', 'प्राकृत व्याकरण', 'पातंजलयोगसूत्रवृत्ति', 'चम्पूरामायण', 'कूर्मशतक', 'समरांगणसूत्रधार', 'शृंगारमंजरी', 'तत्वप्रकाश', 'भुक्तिकल्पतरु' 'राजमृगांक', 'भुजबल निबन्ध' 'शब्दानुशासन', 'नाममालिका' आदि। एक अभिलेख में राजाभोज को 'कविराज' कहा गया है। 'भोजशाला' नाम से अपनी राजधानी धार में राजाभोज ने एक संस्कृत विद्यालय की स्थापना की थी। अनेक कवि, साहित्यकार राजाभोज के दरबारी थे। ये शैव मतावलम्बी थे। उदयपुर अभिलेख के अनुसार इन्होंने अनेक विशाल मंदिर का निर्माण अपने राज्य में करवाया था। वर्त्तमान भोपाल के दक्षिण में 'भोजपुर' नाम का एक नगर राजा भोज ने बसाया। राजा भोज के निधन के बाद जयसिंह और उदय दित्य शासक हुए। उदय दित्य इस वंश के अंतिम शासक थे, जिनका शासन १०९४ तक था। अलाउद्दीन खिलजी ने १३०४ में मालवा पर हमला कर उसे अपने राज्य में अन्ततः विलीन कर लिया। मांडू, उज्जैन, धार, चन्देरी खिलजी राज्य में लय कर गये।

शेरशाह सूरी

शेरशाह सूरी अकबर के पिता हुमायूँ के शत्रु होकर भी अकबर की सारग्राहिणी मेधा से जमीन और राजस्व की नयी नीति की नींव बने। शैशव नाम फरीद था शेरशाह का। इनके दादा हिन्दुस्तान आये और दिल्ली के मुस्लिम शासकों के यहाँ नौकरी कर लिये। हिन्दुस्तान की जमीन पर फरीद का जन्म हुआ। पिता हसन खाँ थे, जो जौनपुर के राज्यपाल के यहाँ नौकर थे। कुछ दिन बाद साहसाराम बिहार में हसन खाँ को जागीर मिल गयी, जहाँ जाकर रहने लगे। हसन खाँ की कई पत्नियाँ थीं। फरीद की मां से हसन खाँ की हमेशा ठनी रहती थी, जिसका एक कारण यह भी था कि हसन का व्यवहार फरीद के साथ अच्छा नहीं रहता था। दुःखी फरीद एक दिन जौनपुर भाग आये और यहीं रहकर फारसी में अनेकानेक ग्रंथ पढ़े और अनेक विद्याओं का गहन मंथन किया। ऊँचे खानदानों के मुस्लिम उस समय सेना की नौकरी के सामने शिक्षा को इतना महत्व नहीं देते थे। फरीद ने पढ़ने को प्राथमिकता दी। हसन खाँ ने बेटे फरीद की कीर्ति से खुश होकर जौनपुर के राज्यपाल जमाल खां से गुजारिश फरीद को वापस सहसाराम भेजने की किया। पर फरीद ने पिता को लिखा कि सहसाराम से अधिक श्रेष्ठ विद्वान जौनपुर में हैं। विद्या, शिक्षा, कला और संस्कृति के शोध केन्द्र जौनपुर पर मुग्ध फरीद सहसाराम नहीं गया। दस वर्ष बीत गये, कुछ लोगों की मध्यस्थता से पिता-पुत्र में समझौता हो गया और फरीद

सहसाराम लौटा। पिता से हस्तक्षेप न करने की शर्त पर जागीर की व्यवस्था फरीद ने अपने हाथों में लिया। अनेक नौकरों को निकाल दिया और नये ईमानदार लोगों की नियुक्ति किया। फरीद की सफलता से विमाता और सौतेले भाई ईर्ष्यालु हो गये। पिता पुत्र में पुनः अनबन बढ़ गयी। खिन्न फरीद ने सहसाराम छोड़कर बहादुर खाँ लोहानी के यहाँ नौकरी कर लिया। बहादुर खाँ लोहानी एक विशाल सेना के शक्तिशाली सेनानी थे। एक दिन ये जंगल में शिकार के लिये गये, थककर पेड़ की छाया में घने जंगल में सोने लगे कि एक दुर्दान्त शेर उन पर झपटा। फरीद ने तड़ाक से तलवार उठाया और एक झटके में शेर से उलझ गया। पैंतरेबाजी से फरीद शेर से लड़ने लगा। हतप्रभ बहादुर खाँ लोहानी मनुष्य और शेर का वह रोमांचक युद्ध देखता रहा। फरीद ने शेर मार गिराया। कृतज्ञ प्रसन्नता से अभिभूत बहादुर खाँ लोहानी ने शेर खाँ की खिताब से फरीद को विभूषित किया। यही शेर खाँ बादशाह होने के बाद शेरशाह हो गये! कुछ दिन बीत चले। पिता हसन खाँ की मृत्यु के बाद मुगल सम्राट शेर खाँ की बहादुरी से पूर्व परिचित होते हुए सहसाराम की सारी जागीर शेरखाँ को प्रदान कर दिया। हुमायूँ जब दिल्ली की गद्दी पर बैठा तब तक शेर खाँ शेरशाह हो चुके थे। जायसी ने अपने ग्रंथ पद्मावत में लिखा है –

'शेरशाह सूरी सुल्तानू। चारों खण्ड तपै जस भानू।।''

हुमायूँ ने शेरशाह को रोकना चाहा। दोनों में अनेक युद्ध हुए। हुमायूँ हारे और काबुल की ओर भागे। शेरशाह भारत का सम्राट हो गये। शेरशाह का सारा राज्यकाल सुधार का युग है। हिन्दू-मुस्लिम दोनों को समान समझते थे शेरशाह और भारत को अपनी मातृभूमि समझते थे। वह कठोर सैनिक अनुशासन रखता थे। अपराधियों पर सख्त था। रास्ते में सरायें बनवायीं और भोजन आदि का हिन्दू-मुस्लिम रीति से प्रबंध करवाया। गर्मी में पौसरे चलवाये। हिन्दुओं के लिये ब्राह्मण पानी पिलाने वाला रखा। पूरे राज्य की जमीन की पैमाइश करवाया। बीमा प्रणाली लागू किया, राजस्व तय किया, और उपज का चौथाई भाग अनाज या नकद लगान की अपनी स्वेच्छा से निर्धारित किया। किसान राजकोष से सीधे जुड़ गया। शेरशाह से पूर्व सरकारी सिक्के अव्यवस्थित थे। शेरशाह ने फारसी और देवनागरी दोनों में सिक्के खुदवाये। राजभाषा और जनभाषा का समन्वय किया। अशोक द्वारा निर्मित प्राचीन राजमार्ग कलकत्ता से पेशावर तक जो था, शेरशाह ने पूरा बनवाया, अंग्रेजों ने ग्रांड ट्रंक रोड से उसी का पुनरुद्धार किया। शेरशाह ने दक्षिण में भी बुरहानपुर तक सड़कें बनवाया। सरायों, कुओं, पेड़ों और खान-पान से सड़कों को शेरशाह ने जोड़ा। साहसाराम में सुन्दर दुर्ग बनवाया, जिसके ध्वंसावेष अब बचे हैं। विन्ध्यप्रदेश पर हमलाकर कालिंजर किले को घेर लिया शेरशाह ने। भयानक युद्ध हुआ। बारूद में अचानक आग लग गयी। शेरशाह जल गये। फिर भी आत्मबाल से तब तक जीवित रहे जब तक किला फतह नहीं कर लिया गया। शेरशाह की मृत्यु के बाद आयोग्य उत्तराधिकारियों के चलते शासन मुगलों के हाथ आ गया। शेरशाह कुछ और जीवित रह जाते तो भारत अधिक समृद्ध हो गया होता।

छत्रपति शिवाजी

सन् १६२८ में शिवाजी का जन्म हुआ था। इनकी माँ जीजाबाई एवं पिता शाहजी थे। उस सदी में काशी के प्रसिद्ध विद्वान् गंगाभट्ट ने इन्हें चित्तौड़ के राणा लक्ष्मण सिंह का वंशज बताया। शाह जी ने एक दूसरा विवाह भी किया था, जिससे खिन्न जीजाबाई पति की जमींदारी में आकर रहने लगी। जमींदारी लगभग लड़खड़ा चुकी थी।, पर जीजाबाई के आने पर कोणदेव जी की चतुरता और लगन से वह पुनः लहलहा उठी। माँ ने बेटे में सारा अपना सुख पाया और उसे रामायण-महाभारत की कहानियाँ सुना-सुना कर तराशने लगी। कोणदेव ने घुड़सवारी, तलवारबाजी के करतब, धनुष-बाण का अभ्यास ही नहीं कराया अपितु सफल रणनीति, छापामार युद्ध के तरीके और लाभ के दाँव-पेंच भी सिखाये। शिवाजी घोड़े की पीठ पर अधिक समय बिताते, चना-गुड़ साथ रखते कठिन साधना में तल्लीन हो गये। बीजापुर को स्वतंत्र कराने का लक्ष्य शिवाजी जी की आंखों में तैरने लगा। आसपास के युवकों को इन्होंने संगठित किया और एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की चुनौतियाँ सामने रख दिया। १८ वर्ष के रहे होंगे शिवाजी जी जब दक्षिण में तोरण के दुर्ग को आक्रमण में ले लिया वर्षा ऋतु के समय, जब उसके शासक और सेना दुर्ग से बाहर थे। शस्त्रास्त्र और धन-रसद भी शिवाजी के हाथ लगे। किलेदार ने बीजापुर के सुल्तान से शिकायत किया। शिवाजी ने दरबारियों को ले-देकर मिला लिया था। फलतः सुल्तान ने शिवा जी को दुर्ग का शासक बनाकर पूर्व किलेदार को पदच्युत कर दिया। शिवा जी ने उसके निकट एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण कराया, जिसका नाम रायगढ़ रखा। सिंहगढ़ और पुरन्दर के किले भी ये ले लिये। चार दुर्ग इनके पास अब थे। धन की कमी अवश्य पड़ गई किला बनवा लेने के बाद। तभी बीजापुर के सुल्तान का एक सैनिक कारवाँ बीजापुर का विशेष खजाना लेकर उधर से जा रहा था। शिवा जी ने यह धन अपने त्वरित सैनिक अभियान में हथिया लिया। बीजापुर का सुल्तान झल्ला उठा और शिवा जी को दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा दिया, जिसे शिवा जी ने ठुकरा दिया। उसने इनके पिता शाहजी को बन्दी बनवा लिया, जिन्हें शिवा जी ने अपनी सूझ-बूझ से मुगल सम्राट शाहजहाँ के साथ समझौता कर एक शाही पत्र से छुड़वा लिया। बीजापुर के सुल्तान ने शिवा जी को पकड़ने के लिए अफजल खाँ को भेजा। एक कूटनीतिज्ञ मुलाकात में अफजल खाँ को शिवा जी ने मार गिराया। बीजपुर का सुल्तान हारता गया, शिवा जी जीतते गये। अन्त में पिता शाह जी ने बीजापुर के सुल्तान एवं शिवा जी के बीच एक समझौता करा दिया। अब शिवाजी मुगलों की ओर मुड़े, औरंगजेब मुगल बादशाह हो गया था। उसने दक्षिण के सूबेदार शाइस्ता खाँ को शिवा जी को बन्दी बनाने भेजा। भारी सैनिक तैयारी के साथ साइस्ता खाँ ने शिवा जी को घेरा, पर छापामार रणनीति में शिवा जी ने रात को सोते समय कुछ सैनिकों को लेकर शाइस्ता खाँ पर हमला किया। शाइस्ता खाँ भागा, पर उसकी ऊंगलियाँ कट गई। शाइस्ता खाँ का पुत्र मारा गया। औरंगजेब भी अनेक पराजय झेलने से रुष्ट हो

गया और जयसिंह को सैनिक अभियान में भेजा। जयसिंह और शिवाजी में समझौता हुआ और शिवा ज़ी इस समझौते के अंदर औरंगजेब से मिलने उसकी राजधानी दिल्ली गये। जयसिंह के पुत्र रामसिंह ने मध्यस्थता किया। पर, औरंगजेब ने इन्हें अपमानित किया और बन्दी बना लिया। शिवा जी बीमारी का बहाना कर रोग से बचने के लिए टोकरे में मिठाइयाँ बँटवाने के लिए बाहर भेजने लगे। उसी मिठाई की दो टोकरी में एक दिन बैठकर स्वयं बेटे के साथ भाग गये और मथुरा, प्रयाग, काशी, गया होते हुए पूना पहुँचे। समर्थ गुरु रामदास ने शिवा जी को एक राष्ट्र निर्माता की गरिमा दिया। सन् १६७४ में इन्होंने छत्रपति की पदवी धारण किया। काशी के विद्वान् गंगा भट्ट ने यज्ञोपवीत करवाकर सारे अनुष्ठान पूरे करवाये। शिवा जी पर भूषण ने 'शिवा बावनी' नाम से एक काव्य रचना प्रस्तुत किया, जिसपर बावन लाख स्वर्ण मुद्रायें, बावन गाँव और बावन हाथी पुरस्कार में पाये। शिवा जी मंदिर-मस्जिद को समान सम्मान देने वाले महान राष्ट्रनिर्माता थे। सन् १६८० में इन्होंने देह छोड़ा।

छत्रसाल

छत्रसाल का जन्म पहाड़ी गाँव में सन् १६४२ को हुआ था, जब इनके पिता इनकी माँ को लेकर मुगलों की सेना के घेरे से बचते हुए भागे-भागे रहते थे। इनके पिता चम्पतराय थे, जो जीवनभर संघर्षरत रहे। इनकी मां भी रणक्षेत्र में जाती थीं। जब ये गर्भ में थे, तब भी इनकी मां पति के साथ रणक्षेत्रमें रहती थीं। तलवारों की खनखनाहट, गोलियों, तोपों के बीच मारकाट और लहूलुहानयुद्ध क्षेत्र का पहाड़ी एवं जंगली इलाका इनकी मां का प्रसूति गृह बना, जिसमें एक ओर शत्रु तो दूसरी ओर प्राकृतिक सौन्दर्य। ये नेपोलियन बोनापार्ट से भी बढ़कर थे, क्योंकि नेपोलियन वाटरलू में हारा, पर, छत्रसाल जीवनभर अविजित रहे। नेपोलियन से अधिक दक्ष, सैनिक संख्या कम, पर मुगलों को जीवनभर हराते-छकाते रहे रणकौशल से। साहित्यानुरागी, प्रजावत्सल, धर्मप्राण, दीर्घजीवी शून्य से शिखर के महापुरुष थे ये, जिनके रोम-रोम में स्वातंत्र्य प्रेम भरा था। सर्वधर्म सम भाव के आचरणनिष्ठ व्यक्तित्व थे छत्रसाल। एक बार इनके माता-पिता कुछ सैनिकों के साथ भोजन पर थे जंगल में कि मुगलों ने जंगल घेर लिया। सारे सैनिक राजा रानी को सुरक्षा घेरे में लेकर भागे और छत्रसाल हड़बड़ी में छूट गये। मुगल सैनिक आये, परोसा गया भोजन किये, किसी को न पाकर चले गये, पर छत्रसाल को नहीं देख सके। धरती पर ये पड़े थे कि इन्हें ढूँढ़ते इनके सैनिकों ने इन्हें पाया और सुरक्षित ले आये। इसके बाद सुरक्षा के कारणों से ये ननिहाल अपनी मां के साथ पहुँचा दिये गये। शैशव में ये असली तलवार, धनुष बाण का खेल खेलते, असली बन्दूकों और तोपों की आवाज पर विभोर हो जाते। हाथी, घोड़े, तोप, बन्दूक और लड़ते अश्वारोही, सैनिकों का चित्र बनाना इनकी रुचि का विषय होता था। रामायण-महाभारत की कहानियाँ सुनते समय तन्मय हो जाते थे छत्रसाल। दश वर्ष की आयु में ये एक

दक्ष सैनिक हो गये। शस्त्र संचालन में ये प्रवीण हो गये थे। केशव की रामचन्द्रिका इन्हें बहुत ही आकर्षित रखती थी। ये जब सोलह वर्ष के थे जब इनके माता-पिता की मृत्यु हुई, एक सैनिक से इनको यह हृदयविदारक सूचना मिली। जागीर जा चुकी थी। न सेना, न धन. ये अपने काका से मिले और एक राज्य खड़ा करने की महत्वाकांक्षा प्रस्तुत किये। काका ने इन्हें मुगलों से भयभीत किया। काका से ये खिन्न हो गये। बड़े भाई से सलाह किये। दोनों भाई एकलक्ष्य पर दृढ़ हो गये। बुन्देलखण्ड राज्य की स्थापना इनका संयुक्त लक्ष्य हुआ।

सेना के लिये धन की व्यवस्था इन्होंने गाँव में रखे माता के कुछ गहने बेचकर लगभग तीन सौ सैनिक जीवट के तैयार किये और जीवनव्यापी युद्ध में कूद पड़े। नित्य सैनिकों में वृद्धि, सैनिक साजसमान पर ध्यान, बुन्देलों की सुरक्षा और धन-संग्रह, रसद पर ध्यान इनकी प्रथम वरीयता थे। शत्रु की भारी सेना के सामने अपनी सेना ऐसे ढंग से हटाते थे कि वैरी समझता था-ये डर कर भाग चले, पर अचानक उलटकर ऐसा आक्रमण छापामार शैली में करते थे कि वैरी को हारना पड़ता था। शत्रु के हथियार, रसद, तोपें, घोड़े, हाथी इनकी प्रथम प्राथमिकता होते थे। सारी संपत्ति शत्रु की लूट लेते थे। बहुत सा धन सैनिकों को पुरस्कार में बाँट देते थे। औरंगजेब बहुत चिन्तित हो गया। इनके भाई सेना का संचालन करते थे। पहाड़ी प्रदेशों को इन्होंने अपना रणक्षेत्र ऐसा बनाया था कि भारी संख्या की सेना उस जाल में फँस जाती थी और हार जाती थी। मैदानी इलाकों में इनके सैनिक उतरने से बचते थे। अभी दीख पड़े अभी न जाने कैसे कहाँ ओझल। हर बुन्देल इनकी विजय हेतु अपने सहयोग देने को तैयार रहता। वृहत्तर बुन्देलखण्ड राज्य में प्रजा सुखी थी। हर व्यक्ति बेरोक टोक छत्रसाल से मिल सकता था। शिवाजी इनसे बड़े थे। एक बार छत्रसाल शिवाजी से मिलने गये भी थे। शिवाजी ने इनका बड़ा सम्मान किया और हिन्दू धर्म के उत्थान हेतु संघर्ष करने और सफल होने का आशीर्वाद दिया। शिवाजी के गुरु जैसे समर्थ रामदास थे, वैसे ही छत्रसाल के गुरु प्राणनाथ थे। बाबा प्राणनाथ ने छत्रसाल को आशीष देते हुए कहा था-

छत्रा तेरे राज्य में धक धक धरती होय।
जित जित घोड़ा मुख करे तित तित फत्ते होय।।

छत्तरपुर नगर छत्रसाल ने बसाया। भूषण शिवा जी के बाद छत्रसाल के पास आये। भूषण की पालकी में छत्रसाल ने कन्धा लगा दिया। भूषण कूद पड़े और बोले- महाराज! यह आपने क्या किया?' छत्रसाल ने कहा, 'मैं शिवाजी की समानता नहीं कर सकता। मैंने उसी से कंधा लगा दिया। मैं कविता की चाकरी कर रहा हूँ। शिवाजी के बाद पेशवा बाजी राव से उन्होंने सहायता माँगी और पाया था। ८३ वर्ष की उम्र में सन् १७३१ में इनका निधन हो गया।

फणीन्द्र नाथ चतुर्वेदी

जन्म : १३ सितम्बर १९८१, वाराणसी

शिक्षा : बी.एफ.ए. (पेण्टिंग) कला एवं शिल्प महाविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

छात्रवृत्ति : केलिफोनिर्या (यू.एस.ए.) - १९९१

प्रकाशित ग्रंथ :

भारत के महान कर्णधार, भारत के जनप्रिय सम्राट, भारत के महान जननायक, भारत के बलिदानी, भारत के महापुरुष, राष्ट्र के अमर सेनानी, हमारे राष्ट्र निर्माता , भारत के गौरव, भारत के महान संत, स्वतंत्रता आंदोलन के तेजस्वी नायक

१८ बाल साहित्य का प्रकाशन

एकल कला प्रदर्शनी :

- उ०प्र० राज्य ललित कला अकादमी - लखनऊ २००३

सामूहिक कला प्रदर्शनी :

- चित्र एवं मूर्तिकला प्रदर्शनी - लखनऊ २०००, २००१
- उ०प्र० राज्य ललित कला अकादमी लखनऊ २००२
- कलार्थ - लखनऊ २००२
- कला एवं शिल्प महाविद्यालय-लखनऊ विश्वविद्यालय, २००२

प्रमुख कला प्रदर्शनियों में भागीदारी :

- वार्षिक कला प्रदर्शनी,
  उ०प्र० राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ-२००२, २००३
- अखिल भारतीय कालिदास अकादमी-उज्जैन (म.प्र.)१९९९
- क्षेत्रीय कला प्रदर्शनी, कानपुर - २००२
- चतुर्थ अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी, गुलबर्गा-२००२

कला शिविर/कार्यशाला :

- राष्ट्रीय ललित कला केन्द्र, लखनऊ द्वारा आयोजित सेरामिक कार्यशाला - २००२
- आईफेक्स नई दिल्ली द्वारा 'प्रथम कलाकार दिवस' के अवसर पर अखिल भारतीय कलाकार शिविर में आमंत्रित कलाकार-२००३

सम्मानित जज :

इण्टरनेशनल हिन्दू स्कूल - १९९९

कला संयोजक :

लोक साधना केन्द्र, विश्व हिन्दी पीठ,
श्री वाणीन्द्र प्रकाशन, ग्राम्य विकास संस्थान,
अक्षर प्लाण्ट, ट्रस्टी : लोक चेतना न्यास

प्रमुख गतिविधियाँ :

- कला सम्पादक : हिन्दी अन्तर्राष्ट्रीयिका
- लगभग ४० से अधिक प्रकाशित पुस्तकों का आवरण चित्रण
- विविध समाचार पत्र-पत्रिकाओं में कार्टून, स्केच एवं लेख प्रकाशित
- उ०प्र० विधानसभा निवार्चन - २००२ में लोकतांत्रिक कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष एवं परिवहन राज्यमंत्री श्री वीरेन्द्र सिंह द्वारा विचार चिंतन एवं लोकतांत्रिक कला मीडिया के लिए आमंत्रित

चित्र संग्रह :

- मा० श्री अटल बिहारी बाजपेयी - प्रधानमंत्री, १९९९
- मा० श्री राजनाथ सिंह-मुख्यमंत्री, उ०प्र०शासन-२०००
- मा० श्री वीरेन्द्र सिंह-परिवहन राज्यमंत्री,उ०प्र०शासन-२०००
- महामहिम श्री विष्णुकान्त शास्त्री, राज्यपाल उ०प्र०-२००१
- आईफेक्स, नई दिल्ली-२००२
- ओहियो (यूएसए), हैदराबाद, मुम्बई, अहमदाबाद, दिल्ली, लखनऊ, रेणुसागर, वाराणसी तथा विविध व्यक्तिगत संग्रहों में प्रकाशित ग्रंथ

हम अतीत की नींव पर,
वर्त्तमान की साख से
भविष्य का साम्राज्य स्थापित करते हैं
-फणीन्द्र नाथ चतुर्वेदी